

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186431

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. ^{H 540}
A 88 R

Accession No. G.H. 11

Author आत्माराम

Title रसायन इतिहास

This book should be returned on or before the date last marked below.

रसायन इतिहास

सम्बन्धी कुछ लेख

लेखक

श्री आत्माराम, एम० एस-सी०

एम्प्रेस विक्टोरिया रिसर्च स्कालर

प्रयाग विश्वविद्यालय

प्रकाशक

विज्ञान परिषद्

प्रयाग

प्रथम बार

मूल्य ॥१॥

हेनरी मोआयसां

(१८५२—१९०६)

अभी तक नोबेल पुरस्कार योरोपके और देशोंमें ही रहा था । सन् १९०६ में मोआयसां ने नोबेल पुरस्कार प्राप्त कर फ्रांसका माथा ऊँचा किया और अपनी मातृभूमिके गौरवको बढ़ाया ।

यदि फ्रांसके रासायनिक इतिहास पर दृष्टि डाली जाये तो एकदम बड़े बड़े महानुभावोंके नाम दृष्टिगोचर होते हैं, जैसे कि लवाशिये, गेलु-साक, डुमास और बरथेनो । यह कहना अधिक कठिन है, कि मोआयसां और बरथेनोमें से कौन बड़ा था क्योंकि दोनों समकालीन थे ।

इस महापुरुषका जन्म फ्रांसकी राजधानी पेरिसमें २९ सितम्बर सन् १८५२ ई० को हुआ । पाठकोंको यह जान कर हर्ष होगा कि रसायनके इतिहासमें सन् १८५२ एक बड़ा ही महत्वपूर्ण वर्ष हुआ है । इस सालमें प्रो० वैएटहाफ, प्रो० पेमिल फ़िशर, विलियम आस्टवाल्ड जैसे रसायनके महा-श्रुषियों ने जन्म लिया, मोआयसां का पिता टोलोस का रहने वाला था और उसकी माता औरलियन्स जातिकी थी । फिर भी वह एक पूर्ण फ्रांसीसी था ।

अपनी स्कूल शिक्षाके पश्चात् वह मौरिकस कॉलेज (College de France) में चला गया । बीस वर्षकी अवस्थामें युवक मोआयसां फ्रांसीसी प्रयोगशालामें जाकर काम करने लगा, साथ ही साथ क्लेयर डेविलसे भाषण भी सुना करता था । इसके एक वर्ष पश्चात् वह डिकेनकी प्रयोगशालामें गया और १८७४ में प्रेजुपेटकी डिग्री पाई । सन् १८८० में उसे पेरिस विश्वविद्यालयसे डी० एस० की डिग्री मिली ।

इस समय तक मोआयसां ने केवल वनस्पति रसायन पर ही अनुसन्धान किये थे, परन्तु इसके एक वर्ष पश्चात् उसने इस प्रयोगशाला को छोड़ दिया और अपनी एक नई प्रयोगशाला खोल दी

और अकार्बनिक रसायन पर कार्य आरम्भ कर दिया, जिसको वह अपने मरते समय तक करता रहा है । तब वह सारबोनकी प्रयोगशाला को चला गया जिसका कि वह बादमें मुख्य अध्यक्ष होने वाला था । सन् १९०० ई० में मोआयसां पेरिस विश्वविद्यालयमें अकार्बनिक रसायनका आचार्य नियुक्त हुआ । इस पद पर वह अपना मृत्यु तक रहा जो कि १९०६ में हुई जब कि उसे नोबेल पुरस्कार पाये दो मास ही बीते थे ।

अकार्बनिक रसायनमें उसका सबसे पहिला अनुसन्धान लोहम्-समूहकी धातुओंके ओषिदों पर हुआ । इसमें उसने विशेष कर रागम् ओषिदों पर अधिक समय व्यतीत किया । मोआयसांके डी० एस० सी० उपाधिकी खोजोंमें भी इसका वर्णन आया है । इस अनुसन्धानमें उसने रागम् एकार्थ ओषिद को त्रिरूपी बतलाया है । इनमेंसे एक अमोनियम रागेनको भस्म करनेसे प्राप्त होनी है और दूसरी उदोषिद को ४४०° शतांश पर सावधानता पूर्वक सुखाने से ।

इन विचारों ने मोआयसां को लोहम् समूहकी ओषिदोंके अवकरण पदार्थोंकी खोज करने पर उद्यत किया । उसने दिखाया कि जिस वस्तुको हम पायरोफोरिक लोहम् कहते हैं, और जो लोहम् काष्ठेत्को भस्म करनेसे प्राप्त होता है, वास्तवमें लोहस ओषिद है । चुम्बकीय ओषिदका दूसरा बहुरूप लोहम्को नम उद्जनमें गर्म करनेसे प्राप्त होता है । यह काला चुम्बकीय चूर्ण वायुमें भस्म करनेसे से लोहिक ओषिदमें बदल जाता है । १५००° शतांश पर गरम करनेसे इसमें से ओषजन निकलता है, और चुम्बकीय ओषिद के एक वायव्य रूप में परिवर्तित हो जाता है । इसी प्रकार और अनुसन्धान किये गये जिनमें कोबल्टम्, निकलम्, मांगनीज़ के पायरोफेरिक रूप बनानेका उद्योग किया गया ।

रुमके पारद-मेलोंसे धातु निकालनेके पश्चात् मोआयसां ने रागस लवणों की खानबोन करनेका

बिचार किया जिनके विषयमें रासायनिक जनता बहुत कम जानती थी। उसने इस कार्यके बड़ी सफलताके साथ समाप्त किया और रागस हरिद व नीले रंग का रागस गन्धेय प्रथम बार बनाया। इसके साथ ही साथ उसने रागस सिरकेत और काष्टेत भी बनाये।

सन् १८८४ में उसने अपनी दृष्टि सविनके यौगिकोंकी ओर डाली, और इस कार्यके इस सीमा तक पहुँचाया कि इसके लिये उसे नोबेल पुरस्कार मिला। उसने इसे स्फुर सविद, ताम्र स्फुरिद और सीस सविदको गरम करके सबसे पहिले बनाया था। यह एक गैस होती है और ओषजनके साथ तड़काने से विस्फुटित होती है और ओषसविद बन जाता है। फिर उसने इसे संक्षीण सविद, संक्षीण ओषिद, गन्धकारन और खटिक सविद स्वर्ण करके बनाया। फिर इसका विद्युत् विश्लेषण किया जिससे कि संक्षीणम् और एक गैस उत्पन्न हुई जो कि तुरन्त पररौप्यम् बिजलोदके प्रभावित करती थी। स्फुर सविदके विद्युत् विश्लेषण करने पर स्फुर अवक्षेपित हो जाता है। परन्तु सविन नहीं निकलती।

मोआयसां इन अनुसन्धानोंमें सन् १८८८ तक लगा रहा। इसी वर्ष उसने कुछ कार्बनिक सविदोंकी खोज की, और ज्वलील नैलिदको रजतसविदके साथ गरम करके ज्वलील-सविद बनाया।

दूसरे वर्ष उसने एक सबसे बड़ी बात ज्ञातकी जो कि सविदकी प्राप्तिका मुख्य कारण हुई। वह यह कि पांशुज-सविद और उदसविकाम्ल ६५° शतांश पर पिघल जाते हैं, और पांशुज सविद व उदसविकाम्लका मिश्रण—२३° शतांश पर भी द्रवित रूपमें रहता है और विद्युत् चलन करता है, इन ही मुख्य अनुसन्धानोंके कारण मोआयसांका सविन प्राप्त करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, जो कि उस समय अकार्बनिक रसायनके संसारमें एक मुख्य उल्लेखनीय थी।

इस अनुसन्धानके करनेमें मोआयसां ने बहुत सी बातें मालूम कीं जिनके द्वारा वह अपना यंत्र

बना सका जिससे कि सविन तैयार की गई। सबसे पहिले सविनको बनानेके लिये उसने स्फुर सविद और स्फुरको रक्तम पररौप्यम् पर प्रवाहित किया। ऐसा करने एक गैस निकली जो कि पांशुज नैलिद से नैलिन् निकलती थी, परन्तु बड़ी सरलतासे पररौप्यम् पर आक्रमण करती थी।

इनके पश्चात् उसने संक्षीण-सविदका विद्युत् विश्लेषण किया। परन्तु यह विद्युत् धारा का शिथिल चालक सिद्ध हुआ, और अनार्द्र उदसविकाम्ल मिला कर संक्षीण-सविदकी चालक शक्ति बढ़ानेकी चेष्टा की। परन्तु इन दोनोंमें पांशुज-सविद मिलानेसे कुछ अच्छा परिणाम हुआ, और इससे जरा आगे बढ़ना शेष रहा था, कि सविनका अनुसन्धान हाशोंमें ही था। बस अब क्या था, संक्षीण-सविदको निकाल कर उदसविकाम्ल और पांशुज-सविदका विद्युत् विश्लेषण करना रहा था।

उसने अपना यंत्र पररौप्यम् धातुका बनाया, बिजलोद पररौप्यम् व इन्द्रमके पारदसेल का बनाया। बिजलोदकं सिरोंको मोटा रखवा गया जिससे कि वह शीघ्र पतले न पड़ जायें। पैराफीन डाटसे चूल्ह-नलीके सिरें बन्द किये, श्रूणात्मक बिजलोदकी डाट शीघ्र ही जल जाती थी, इस कारण दूसरी बार फ्लोरस्फारके डाट लगाये गये।

इस प्रयोगमें मोआयसां सविन प्राप्त करनेमें सफल हुआ, एक बिजलोद पर सविन निकली और दूसरे पर उदजन। सविन एक आसन्ननलिकासे बाहर निकली गई। तत्पश्चात् उसने यह ज्ञात किया कि गन्धक, शशिम, और थलम् इस गैसमें जलते हैं और सफेद अवक्षेप जम जाते हैं। गन्धकके साथ गस* गैस बन जाती है और स्फुरके साथ स्फुस* स्फुस* बनते हैं। उसने यह भी ज्ञात किया कि सविन व उदजन अंधेरेमें भी मिल जाते हैं। बहुत सी धातें सविनसे अति शीघ्र मिल जाती हैं, और अग्नि उवाला तक निकलनी है। यहाँ तक कि पररौप्यम् और स्वर्णम् तक इसके प्रभावको नहीं सह सकते। नैलिद और अरुणिद व हरिद इसके

प्रभावसे विभाजित हो जाते हैं और क्रमशः नैलिन, अरुणिन व हरिन निकलती हैं।

मोआयसां ने आलसीम् व सविनमे मिलानेका भी उद्योग किया था परन्तु कोई सफलता प्राप्त न हुई, यद्यपि उसने अनिप्रभावशाली विद्युत् विसर्गसे इनके जिलानेकी चेष्टा की।

मोआयसां ने कर्बनके दानों वायव्य सविदोंका बना कर उनसे सविन निकाल देनेका प्रयत्न इस आशा पर किया कि कर्बन हीरेके रूपमें रह जायगा, परन्तु इस विचारमें कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई, और सर्वदा काली स्याही ही पैदा होती रही; इस प्रकार बढ़ते बढ़ते प्रयोगशालामें हीरा बनानेका विचार उत्पन्न हुआ। यह ज्ञान हो चुका था कि कुछ उत्काश्रोंमें कर्बनके छोटे छोटे कण होते हैं, यद्यपि अधिकतर इनके भीतर लोहा होता है, और इसके भीतर छोटे छोटे हीरेकी कनी होती है। मोआयसां ने अपनी तीक्ष्ण बुद्धिसे इनकी बनावटका एक सिद्धान्त रसायनिक संसारके समक्ष पेश किया।

उसका सिद्धान्त यह था, कि कर्बन पहिले ही से लोहेमें प्रविष्ट हो चुका था; जब कि वह पिघली हुई दशामें था। हीरेका पृष्ठतल परस्परसे ठगड़ा हो गया था, कड़ा होने पर लोहे पर एक बड़ा भारी दबाव पड़ा, क्योंकि ठोस लोहा जिसमें कर्बन हा पिघले हुए लोहेकी अपेक्षा अधिक आयतन घेरता है, इन विचारोंका दृष्टिमें रखते हुए मोआयसां ने हीरा बनानेके लिये अपने प्रयोग आरम्भ कर दिये, जिनमें कि उसे अधिक सफलता प्राप्त हुई।

सबसे पहिले उसने कर्बनको लोहेमें १०००° शतांश पर घोला, परन्तु उसे इसमें सफलता प्राप्त नहीं हुई, अतः उसने इस प्रकार विचार किया कि १०००° श से ऊपर लोहेमें कर्बनका घुलनशीलता साधारण सिद्धान्तके प्रतिकूल बढ़ जाती है। इस उल्लेख पर सफलता प्राप्त करनेके लिये विद्युत् भट्टी का आविष्कार किया गया, जिसके द्वारा १००० श

से बहुत ऊपर क पहुँच सकते हैं। पाठकोंको यह विदित हो गया होगा, कि किम प्रकार मोआयसां के तीनों बड़े अनुसन्धान एक दूसरेका कारण हुए, और मोआयसांकी तीक्ष्ण बुद्धिसे उनकी वृद्धि हुई। मोआयसांका उद्योग उसके ही शब्दोंमें भले प्रकार समझा जा सकता है, जाँकि उसने अपनी पुस्तक विद्युत् भट्टी ("Electric furnace") की भूमिका में दिये हुये हैं:—परन्तु इन अनुसन्धानोंमें जिस असीम आनन्दका मुझे अनुभव प्राप्त हुआ है, वह मैं अपने शब्दोंमें प्रगट नहीं कर सकता। एक नये मार्गका निकालना, अपनी इच्छाकी पूर्ति करनेके लिये सब सुविधाओंका होना और यह कि प्रत्येक दिशासे नये नये विषयोंका प्रादुर्भूत होते देखना इन सब बातोंसे मेरे हृदयमें एक ऐसे आनन्दकी जागृति हुई है, जिसे केवल वही लाग अनुभव कर सकते हैं, जिन्होंने स्वयं वैज्ञानिक अनुसन्धानोंके आनन्दका आस्वादन किया है।

उसने विद्युत् भट्टी किसी व्यापारिक उद्देशसे नहीं बनाई थी बल्कि अपने अनुसन्धानोंमें सफलता प्राप्त करना ही उनका मुख्य कारण था। इसकी बनावट बड़ी सरल थी। दो कर्बनके बिजलीद्वारे, जिनके बीचमें विद्युत् चाप रहता था और गरम होने वालो वस्तु एक चूनेके बर्तनमें रखी जाती थी। चाप एक बड़े चुम्बक द्वारा नीचेका झुकाया जाता था जिससे कि पूरा ताप गरम होने वाली वस्तु पर ही पड़े। भट्टीका तापक्रम विद्युत् धाराका तीव्रता पर निर्भर होता है, परन्तु कर्बनके उड़नशील तापक्रम पर भी निर्भर है।

इस अद्भुत यंत्रके द्वारा मोआयसां कई ऐसे अनुसन्धानोंमें सफल हुआ जो उस समय तक नहीं हुए थे और कुछ अधिक कठिन समझे जाते थे, जिनमेंसे कुछ तो व्यापारिक दृष्टिसे लाभकारी हैं।

प्रयोगशालामें हीरा बनानेके दृढ़ विचार के कारण मोआयसांका लेखनिके भिन्न भिन्न रूपों की पूर्ण खानबीन करनी पड़ी। उसने नाना प्रकारके

कबर्नौको बहुत तेज़ गरम किया। इस प्रकार उसने कबर्नका भिन्न भिन्न दशाओंमें ज्ञान प्राप्त किया। इसी ज्ञानकी शक्तिसं उसने अन्तमें हीरेका प्रयोगशाला में बना कर दिखा ही दिया जो कि उस समय तक एक अनहोनी बात समझी जाती थी। इस प्रकार मोश्रायसां ने वैज्ञानिक जगत्के ज्ञान चक्षु खोल दिये। इसके पश्चात् उसने भारी धातुओंके कबिंदों की छानबीन की।

मोश्रायसां ने ही सबसे पहिले विशुद्ध द्वारा रागम् धातुको तैयार किया। इसी प्रकार के प्रयोग उसने और धातुओंके साथ भी किये, जैसे सुनागम्, बुल्फ्रामम्, मांगनीज़।

धातुओंके कबिंदों पर उसने जगत् विख्यात कार्य किया और उन पर पानीका प्रभाव भी समझाया, कि किस प्रकार पानीके प्रभावसे यह वस्तुएँ ज्वलन व दारन देती हैं, इस विचारको दृष्टिगोचर रखते हुए उसने पेट्रोलकी उत्पत्ति का सिद्धान्त रासायनिक संसारके सामने रखला।

उसने बहुतसे शैलेत और टंकत भी तैयार किये, जिनमेंसे लोहम् और रागम् पर मुख्य ध्यान दिया था, यद्यपि उसने कबोरण्डम् रवे प्राप्त कर लिये थे परन्तु यह बात किसी मुखपत्रमें नहीं छपवाई थी। उसने कुछ उद्दि भी बनाये थे, परन्तु तब भी उसने अपने सबसे प्यारे स्रविनको नहीं छोड़ा। उसने स्रविन का घनत्व भी निकाला।

इस प्रकार उसने ८०० लेख प्रकाशित किये थे। वह सर्वदा नये नये विचार सोचा करता था, अपने साथियोंकी सहायतासे उसने अकार्बनिक रसायन पर एक बड़ी पुस्तक कई भागोंमें लिखी। वह रायल सोसाइटी लन्दन का सदस्य था, और रायल इन्स्टीट्यूशन व रसायनिक सभा लन्दन ने भी उसे इस सम्मानसे सुशोभित किया था, और बहुत सी वैज्ञानिक संस्थाओंका सदस्य रहा जैसे, अपसाला, पेरिस, थ्यूरिन, बेलजियम इत्यादि।

सन १८८७ में पेरिस इन्स्टीट्यूट ने उसे प्रिक्स लाकेज़ जो एक बड़ा पुरस्कार है, दिया। १८९६ में रायल सोसाइटीसे डेवी पदक मिला और १९०२ में हाफ़मैन पदक और सन १९०६ में सबसे बड़ी वैज्ञानिक विजयका भागी हुआ, अर्थात् नोबेल पुरस्कारसे सम्मानित किया गया, और दो मास पश्चात् यह अद्भुत व्यक्ति संसारको सर्वदाके लिये छोड़ गया। इस स्थान पर मोश्रायसांके रहन सहन पर कुछ कहना अनुचित न होगा। जिनको उसके साथ रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वही उसको भली प्रकार जान सकते हैं। उसकी भोली भाली मूर्ति ने किसको आकर्षित नहीं किया। उसका सा सद्ब्यवहार प्रत्येक मनुष्यमें होना कठिन है, दयालुताका तो जानिये वह देवता ही था। अपनी मृत्यु समय तक वह विज्ञान पर मोहित रहा और उसकी ही यादमें प्राण गवां कर विज्ञानरूपी देवी को सम्मानित किया।

किरण-चित्र-दर्शताके निर्माता

(Makers of Spectroscopy)

यह प्रायः सभी वैज्ञानिक जानते होंगे कि किरण चित्र (Spectrum) क्या है। यदि साधारण प्रकाशकी कोई किरण किसी त्रिपाश्वर पर डाली जाय तो सफेद बिम्ब होनेके बजाय रङ्ग बिरङ्गा बिम्ब दिखाई पड़ता है। इस बातको जताने वाला विश्व विख्यात भौतिकाचार्य सर आइजक न्यूटन था। उसने इस बिम्बका नाम किरण-चित्र रक्खा। इसमें सात रङ्ग होते हैं। त्रिपाश्वरके इस स्वभाव ने हमारे ज्ञान की पूंजा में एक बड़ा ही महत्वपूर्ण भाग लिया है। इस गुणके रसायन विद्या में प्रयोग करने वाले जर्मनीके दो महापुरुष थे, राबर्ट विलियम बुनसन और फ्रां० करशाफ। रसायन और भौतिक शास्त्र सर्वदा इस सद्प्रयोगके लिये इन दोनों महर्षियोंके ऋणी रहेंगे। बुनसन और करशाफ ने बतलाया कि यदि किसी धातुके लवणको ज्वालामें रक्खा जाये और इस ज्वालाकी किरण त्रिपाश्वर पर डाली जाय तो वैसा बिम्ब नहीं मिलता जैसा कि साधारण प्रकाशकी किरणसे मिलता है। इसमें सात रङ्ग पास पास नहीं होते बल्कि मुख्य मुख्य रङ्गोंकी रेखायें और उनके बीच बीचमें अंधेरा मण्डल होता है। यह रेखायें तत्त्वका स्वभाविक गुण हैं; अर्थात् प्रत्येक तत्त्व अपनी रेखायें पृथक् पृथक् देता है। दो तत्त्वोंकी रेखा एक नहीं हो सकती। इसी गुणके आधार पर बुनसन और करशाफ ने खनिज जलमें दो नये तत्व निकाले जिनका नाम लातम और व्योमम है, बस यहींसे किरण-चित्र-दर्शता की नींव पड़ी। बुनसन और करशाफके इस जगत्-प्रसिद्ध अनुसन्धानके उपरान्त सर विलियम क्रुक्स ने शैलमको इसी प्रकार ज्ञान किया। सर हेनरी रास्को ने इसी का प्रयोग बलदमके साथ किया, क्योंकि यह सब

महानुभाव एक ही समयमें हुये हैं, इसलिये इनको किरण-चित्र-दर्शताका निर्माणकर्ता कहा जा सकता है। अब तो यह विज्ञान इतना बढ़ गया है कि भौतिक शास्त्रका एक मुख्य भाग ही हो गया है। आधेसे अधिक तत्व इसकी ही सहायतासे निकाले गये हैं। पाठक अब समझ गये होंगे कि किरण-चित्र-दर्शता ने किस प्रकार और किस सीमा तक हमारे ज्ञान को बढ़ाया है। यहाँ पर इन लोगोंके अनुसन्धानों का वर्णन करनेकी चंष्टाकी जायगी जिससे यह विदित होगा कि हम इन व्यक्तियों के कितने ऋणी हैं।

राबर्ट विलियम बुनसन

[सन् १८११—१८६६ ई०]

इस संसारमें प्रत्येक व्यक्ति ने जिसका रसायन और भौतिकसे कुछ भी परिचय है, बुनसनका नाम अवश्य सुना होगा। उसके आविष्कार ऐसे गूढ़ और सर्वप्रिय हैं—कि कितनों की आँखोंने बच कर नहीं जा सकते। इस महान आत्मा ने ३१ मार्च सन् १८११ को गोटिंजनमें जन्म लिया। इनका पिता क्रिश्चियन बुनसन गोटिंजन विश्वविद्यालय में प्रधान पुस्तकाध्यक्ष था और साथ साथ वर्तमान भाषा-विज्ञानका अध्यापक भी था। हनावरमें प्रारम्भिक शिक्षा पानेके पश्चात् १८२८ में बुनसन विश्वविद्यालय में भेजा गया। वहाँ बुनसन को रूमियेयरकी अभ्युत्थानमें कार्य करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ जिसने सन्दर्भमके ज्ञान किया था, और १८३० में उपाधि पाई। इसके पश्चात् बुनसन ने पेरिसकी यात्रा का और वहाँ पर गेनो पेलूज और डेसप्रेज जैसे वैज्ञानिकोंसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त किया। इसी प्रकार वाइना और बर्लिन के विश्वविद्यालयों में घूम कर बुनसन १८३४ में गोटिंजन लौट आया और यहीं पर विश्वविद्यालय ने उसे रसायन विभागमें सहायककर्ता (Privat dozent) के पद पर नियुक्त किया। रूमियेयरकी मृत्युके उपरान्त बुनसन कुछ दिनों तक उसके

स्थान पर काम करता रहा। जनवरी १८३६ में बुनसन कासेलके पालीटेक्नीक स्कूलमें बोलरके पद पर नियुक्त हुआ और १८३६ में विशेष अभ्यापक हो कर मारबर्ग विश्वविद्यालयमें गया। १८४२ में विश्वविद्यालय ने उसे प्रधान अभ्यापक बना दिया, इस पदको बुनसन ने १८५१ तक सम्मानित किया। सन् १८५२में हाइडेलबर्ग विश्वविद्यालयमें मुख्य अभ्यापक के पदको स्वीकार किया और जीवन पर्यन्त इसी गद्दीको सुशोभित किया। इस प्रकार बुनसन ने ५६ वर्ष तक विज्ञानकी पूर्णरूपसे सेवाकी, जिसके कारण उसका नाम जब तक यह विज्ञान इस संसारमें जीवित है जीवित रहेगा। १९ वीं शताब्दीके सबसे बड़े रसायनज्ञोंमें उसका नाम गिना जाता है।

बुनसनके अनुसन्धान इतने विस्तृत हैं कि इस स्थान पर केवल मुख्य मुख्य बातोंका वर्णन करनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता।

सर्व प्रथम कार्य जिससे बुनसन को रासायनिक जगतमें मान मिला, ताजे अश्लेषित लोह—ओषिद पर था, जो संक्षीणम् विषके लिये विषनाशक सिद्ध हुई। इसके मिल जानेसे संक्षीणम् विष पानीमें नहीं घुलता। इस अनुसन्धानसे रसायनको और विशेष कर जनताको जो लाभ पहुँचा है उसका अनुभव पाठक स्वयं हो लगा सकते हैं। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि बुनसनसे पहिले संक्षीणम् विषके लिये कोई विषनाशक विदित न था।

इसके पश्चात् बुनसनकी मनोवृत्ति भूगर्भशास्त्र की ओर प्रेरित हुई, जिसमें यह अपने जीवन काल में अधिक निपुण हो गया था। बोनके पास लिग्नाइट (Lignite) तलमें से जो पेलोफेन निकलती है, बुनसन ने उसका विश्लेषण किया, जिससे भूगर्भशास्त्रमें बड़ी सहायता मिली है।

बुनसन ने बड़े रसायनिक महत्त्वका कार्य द्विश्यामिद पर किया। उसने केवल इनके संगठन

का ही नहीं बतलाया बल्कि इनका सम्बन्ध दूसरे और ऐसे यौगिकोंके साथमें विस्तार पूर्वक समझाया। उसने इनके रवे भी बनाये और इनके स्वभावको भी देखा। इन सब प्रयोगोंसे बुनसन ने अमोनियम लाहीश्यामिद और पांशुज लाहीश्यामिद में समपरिवर्तनता स्थापित की।

पहला अनुसन्धान जिससे कि बुनसन की वैज्ञानिक कुशलता विदित हुई कंकोडील यौगिकों पर था; जो उसने १८३७ में कानेलमें आरम्भ किये थे और जिनको वह मारबर्ग विश्वविद्यालयमें भी करता रहा। इन अनुसन्धानोंका महत्त्व जनानेके लिये उस समयके बड़े रसायनज्ञोंकी सम्मति यहाँ दी जानी है। उस समयके रसायनिक नेता बरजीलियस की सम्मति का अनुवाद जो उन्होंने अपनी पत्रिका (Jahresbericht) में प्रकाशित की थी, नीचे दिया जाता है। पाठकों को जानना चाहिये कि बरजीलियस वैज्ञानिक तर्क वितर्कमें प्रथम स्थान रखते थे। छोटे वैज्ञानिक तो उनके नामसे ही घबरा जाते थे। रसायनिक क्षेत्रका उनको परशुराम कहा जा सकता है। उनका कथन था :—

“बुनसन ने एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण कार्य कंकोडील यौगिकों पर किया है, जो कि अनार्द्र पांशुज सिरकंत को संक्षीणसाल्मके साथ गरम करनेसे बनता है। इससे बुनसन ने बहुतसे यौगिक बनाये हैं, जिनका स्वभाव कार्बनिक यौगिकोंसे अधिक समानता रखता है। साथ ही साथ इन यौगिकोंमें संक्षीणम् एक तत्वके समान रहता है। इस अनुसन्धानसे बुनसन ने वैज्ञानिक जगत्में अपना नाम सर्वदाके लिये अमर कर दिया है। रसायनशास्त्र उसका बड़ा ऋणी हो गया है। यह विषय इतना महत्त्वपूर्ण और भयानक था कि साधारण मनुष्यको तो इसे छूनेकी भी सामर्थ्य नहीं हो सकती। यौगिक मूलके सिद्धांतकी यह अनुसन्धान एक नींव है।”

बुनसनको केकाडील पर कार्य करने में बड़ी बड़ी मुसीबतोंका सामना करना पड़ा। एक बार उसकी आंख तो बिल्कुल ही बेकार हो चुकी थी और दूसरी बार उसको विषका असर हो ही चुका था। इस दुःखके कारण वह बहुत दिनों तक जीवन और मृत्युके बीचमें ही पड़ा रहा। इसके पश्चात् जैसा कि पाठक जानते होंगे फ्रैंकलैंड और ग्रिग-नार्ड ने धात्विक कार्बनिक यौगिक बना कर रसायन यौगिकोंका विस्तार किया।

बुनसन ने लोहेकी भट्टियोंसे जो गैस निकलती है, उनकी बड़ी ही चतुरतासे परीक्षा की। उस समय गैसोंका घनत्व तथा आयतन नापनेकी प्रणालियां बड़ी भद्दी थीं। परन्तु बुनसन ने १८४४ तक केवल अपने गैसोमेट्रिक प्रयोग ही ठीक नहीं किये बल्कि साथ साथ उसने इनका प्रयोग और भी कई व्यापारिक विधियोंमें किया, जैसे लोहेका वात भट्टीसे उत्पन्न करना। इस अनुसन्धानसे संसार ने जो लाभ उठाया है, अकथनीय है। बुनसनका गैसों पर प्रयोग करनेकी बड़ी चाह रहती थी। इस अनुसन्धानमें जो चतुरता और दृढ़ता बुनसन ने दिखाई वह कदापि प्रत्येक मनुष्यके भागमें नहीं आ सकती। चिमनिगोंसे जो गैस निकलती थी वह अधिकतर खराब हो जाती थीं। बुनसन ने अपने प्रयोगों के आधार पर इसके लिये भी एक विधि बतलाई जिससे बहुत लाभ हुआ। इससे जो ताप बेकार जाता था काममें लाया गया और इस प्रकार कला कौशलके अधिक लाभ पहुँचा।

बुनसनके जगत विख्यात अनुसन्धानोंमें कर्बन-दस्तम् वाटरीका आविष्कार भी है, जोकि उसने कम व्यय पर विद्युत् प्राप्त करनेके लिये १८४१ में किया। इससे केवल व्यय ही नहीं घट गया बल्कि विद्युत् धाराके प्रवाहका समय भी बढ़ गया। विद्युत् धारा द्वारा प्रकाशके लिये प्रयोग बनाने वाला पहला व्यक्ति बुनसन ही था। उसने ही विद्युत् बत्तीकी नींव डाली थी, कि किस प्रकार दो कर्बनके छुड़ एक काँचके बल्बमें बन्द करके प्रकाशका काम दे

सकते हैं। बुनसन ने अपनी बाटरीकी सहायतासे दस्तम् और जल का विद्युत् रसायनिक भार निकाला। इन प्रयोगोंसे फ़ैरेडके नियमोंका प्रमाण मिलता है। बुनसन ने अपनी बाटरीसे धातु तैयार करनेकी भी चेष्टा की थी, जैसे मगनीसम्। जिसके लिये डेवी ने बहुतसे प्रयोग किये थे परन्तु कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई थी। इस प्रकार धातुको प्राप्त करके बुनसन ने इसके रसायनिक व भौतिक स्वभावोंकी परीक्षा की। केवल उसने यह बाटरी ही नहीं बनाई बल्कि उसने ताम्र पाइराइट और ताम्रम् से ताप-युगल-ममूह भी बनाया, जिसका बहुत प्रयोग हुआ है।

१८४४ में बुनसन ने तैल बिन्दु प्रकाश-मापक का आविष्कार किया, इस यंत्र में एक कागजके बीचमें एक तैल-बिन्दु लगा दिया जाता है, और एक ओर जाने हुये बत्ती-बलका लैम्प रक्खा जाता है, दूसरी ओर जिसका बल निकालना हो उसे रखते हैं। इस यंत्रके विषयमें जर्मनीके राजकुमार फ्रैंड्रिक ने कहा था कि आज मुझे तैल बिन्दुका मोल ज्ञात हुआ है। अब तक मैं इसे बेकार ही जानता था।

भौतिक विज्ञानके क्षेत्रमें सबसे बड़ा कार्य हिम और भापकलारी-मापकका बनाना बुनसन का ही काम है। जो चतुरता और निपुणता इस कार्यमें दिखाई वह तो सबके मनको मोह लेती है। इनके बनानेका अभिप्राय चीजोंका आपेक्षिक ताप निकालना था, जो कि कम संख्यामें मिलती थीं, और जिनके लिये साधारण कलारी मापक बेकार थे। उस समय नीलम्, सृजकम्, लानम् इत्यादि का विशिष्टताप निकालना अधिक कठिन समझा जाता था। इस कार्यको पूरा करनेके लिये बुनसन ने अपना कलारीमापक बनाया। इन यंत्रोंका वर्णन यहां देना विशेष आवश्यक नहीं है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति उनको भना भांति जानता है। वे बुनसन-हिम-कलारी-मापक और भाप कलारी मापक के नामसे विख्यात हैं। यह कार्य १८७० में हुआ।

पाठकोंको विदित होगा कि किस प्रकार डूलांग और पेटिट नियमके प्रयोगसे आपेक्षिक ताप जानकर किसी तत्त्वका परमाणु भार निकाला जा सकता है। जब इन तत्त्वोंका जिनके नाम ऊपर दिये हुये हैं, आपेक्षिक ताप बुनसन कलारी मापक द्वारा विदित हो गया, तो उनका परमाणु भार निकाल लिया गया। साथ ही साथ बहुतसे यौगिकोंके सूत्र भी ठीक किये गये। यह बुनसनके एक मुख्य अनुसन्धानोंमें से है।

बुनसनकी यांत्रिक निपुणता तो जगत्को भले प्रकारसे विदित है। बुनसन-यन्त्रक भी जो हम रात दिन काममें लाते हैं और संसारकी कई प्रयोगशाला ऐसी नहीं है जिसमें कि यह यन्त्र न पहुँच गया हो, उसीके हाथोंकी करामात है। देखने में किनना साधारण परन्तु काममें सबसे ज्यादा जैसा उर्दूमें कहा है (कम खर्च वाला नहीं)।

सन १८५५ ई० भौतिक रसायन अथवा प्रकाश रसायनमें बुनसन ने रास्कोके साथ जो कार्य किया वह एक प्रकारसे नीचेके समान है, जैसा कि महापुरुषों ने कहा है। यह कार्य उद्‌जन और हरिन्का प्रकाशकी उपस्थितिमें मिलना है। यद्यपि यह कार्य गैलुसाक, थेनार्ड, डेपर इत्यादि वैज्ञानिकों ने किया था, परन्तु बुनसन ने इसको बड़ा महत्व पूर्ण बनलाया है। किरण-शक्ति-मापक (Actinometer) जो कि डेपर ने इस प्रक्रियाका करनेके लिये बनाया था, बुनसन व रास्कोके हाथों ही पूर्णताको प्राप्त हुआ। इस यन्त्रके द्वारा प्रकाश रसायनिक क्रियाओंके नियम बड़ी बड़ी कठिनाइयों पर विजय पाकर इन दोनों व्यक्तियों ने बनाये।

एक बड़ी महत्व की बात इस प्रक्रियामें इन्होंने “प्रकाश रासायनिक आवेश” बनाई। इसका अर्थ यह है कि जिस समय प्रकाश इन दोनों गैसों पर पड़ता है, उसी समय से प्रक्रिया पूरे रूपसे आरम्भ नहीं होती परन्तु उसे कुछ समय लगता है। इसका नाम प्रकाश-रासायनिक

आवेशका समय रक्खा गया। लहर लम्बाई और रासायनिक प्रक्रियाका सम्बन्ध भी समझाया गया है। यह बुनसनका सबसे बड़ा कार्य कहा जा सकता है।

प्रकाश-चित्र-विश्लेषण पर बुनसन का कार्य पहिले ही कहा जा चुका है; यह एक वह अनुसन्धान है जिसके लिये भौतिक और रसायन शास्त्र बुनसन और करशाफेके ऋणी रहेंगे। इस विषय पर पहिले ही कहा जा चुका है, इसलिये यहाँ पर और कुछ न कहेंगे। पाठक स्वयं ही इसका पता लगा सकते हैं। १८७५ में बुनसन ने दुष्प्राप्य पार्थिव धातुओंके तड़ित्-किरण-चित्रों पर कई लेख प्रकाशित किये। एक बड़ी विचित्र घटना बुनसनके साथ इन अनुसंधानोंके प्रकाशित करनेमें हुई, जैसी न्यूटनके साथ हुई थी। एक रोज वह अपने लेख मेज़ पर रखे छोड़ गया। वहाँ पानीसे भरी बोतल रखी हुई थी। जो प्रकाश खिड़कीके द्वारा पानीसे भरी हुई बोतल पर पड़ा उसका सब किरणें एक बिन्दु पर इकट्ठा हो गईं, क्योंकि बोतल ने तालका काम किया। इन किरणोंसे इतना ताप उत्पन्न हो गया कि सब कागज जल गये। इससे बुनसनका बड़ा कठिनाई पड़ा।

अब कुछ बुनसनके उन अनुसन्धानोंका वर्णन किया जायगा जा कि उसने भूगर्भ शास्त्रके क्षेत्रमें किये। आइसलैंडमें ज्वाला मुखीक फटने पर उसने महत्व पूर्ण कार्य किया। डेनमार्क सरकार ने वैज्ञानिकोंकी एक टोली इस कार्यके लिये भेजी थी। उसमें बुनसनका भी आइसलैंड भेजा गया। बुनसन ने जो काम इस टोलीमें किया उसका पूरा वर्णन देना कठिन है। उसने जलके ताप पर भी काम किया था। उसका कहना था कि किसी भी दशामें पानीका ताप उबलने वाले शतांश तक नहीं पहुँचता।

तत्त्वोंके ऊपर बुनसनके एक और कार्यकी ओर भी दृष्टि डालनी चाहिये। यहाँ पर उसने तत्त्वों

के पृथक् करनेमें जो वैज्ञानिक निपुणता दिवाई उसका तो अनुमान करना भी अत्यन्त कठिन जान पड़ता है। उसने इस प्रक्रियाका वर्णन अपनी पुस्तकमें किया है। उसमें बतलाया है कि किस प्रकार (१) पररौप्यम् और पैलादम् (२) रुथेनम् का पृथक् करना (३) इन्ड्रम् और ओड्रम् का विभाजन (४) ओड्रम्के यौगिकोंका बनाना। क्या इस कामका करने वाला आदमी एक बड़ा पुरुष न होगा। लिखनेमें तो यह बातें छोटी ही सी विदित होती हैं परन्तु यदि वास्तवमें देखा जाय तो इनके करनेमें बड़ी ही चतुरता और धैर्यकी आवश्यकता है, जो बुनसनमें जन्म हो सें थी।

एक और कार्य यहाँ कहा जायगा। बुनसन ने बारूद के ऊपर भी एक मुख्य कार्य किया है। बहुत समयसे रसायनज्ञ उन प्रक्रियाओंको, जो बारूद फटने पर होता है, समझानेकी चेष्टा कर रहे थे, परन्तु इसका श्रेय बुनसन को ही है। इसका समर्थन विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक नोबेल ने किया था। बुनसन काँचके यन्त्र बनानेकी क्रियामें एक ही था। उसके समान काँच फूटने वाला उसके समयमें कोई नहीं था। वह गरम काँचको हाथसे पकड़ लेता था।

दूसरी सेवा बुनसन ने गैनांमेट्रिक क्रियाओं पर एक पुस्तक लिख कर की। उसका पुस्तकें लिखनेका अधिक शौक नहीं था परन्तु यह पुस्तक बड़े ही महत्व की है, जिससे उसका नाम सर्वदाके लिये जीवित है।

बुनसन अपनी सारी अवस्था क्वारा रहा। वह तो अपने शिष्योंको ही अपना बेटा और पोता समझता था। उसके शिष्य उसके बाबा बुनसन कहते थे उसका व्याहार वह ही जान सकते हैं, जिन्होंने कि उसका स्वाद चखा है। वास्तवमें उसको अपने समय का सबसे बड़ा रसायनज्ञ कह सकते हैं। वह १८४२ में केमिकल सोसाइटीका

सदस्य हुआ। १८५८ में रायल सोसाइटी ने अपना सदस्य चुन कर सम्मानित किया। १८६० में रायल सोसाइटी ने अपना सबसे बड़ा पदक 'कापले-पदक' प्रदान किया। १८६० में बुनसन और कर्शाफ को डेवो-पदक मिला। यह डेवो-पदकका पहिला हा प्रदान था। १८८८ में मृत्यु के १ वर्ष पहिले रायल सोसाइटी आफ आर्ट्स ने ऐलबर्ट पदक प्रदान करके बुनसनके अनुसन्धानोंकी प्रशंसा का परिचय दिया। १८८८ में बुनसन अपना गद्दासे अलग हुआ। मृत्यु तक बुनसन अपने कार्यमें लगा रहा, यद्यपि उसकी कान और आँखों ने जवाब दे दिया था, तो भी उसे हार्दिक आनन्द तो विज्ञानके कार्यमें ही होता था। बुनसन किसी देशके लोगों से द्वेष नहीं रखता था, जैसा कि ज्ञान होगा कि उसके बड़े मित्र ब्रिटिश ही थे जैसे रास्को इत्यादि। अन्तमें १६ अगस्त १८८८ के काल चक्र में पड़ कर इस संसारसे सर्वदाके लिये गमन किया। उसकी मृत्युसे वैज्ञानिक जगत् में जो कमी हुई है वह कमी पूरी नहीं हो सकता। वह सचमुच एक वैज्ञानिक था।

सर विलियम क्रूक्स

[१८३२—१८१६]

भौतिक व रसायन शास्त्रके पढ़ने वालांमें ऐसे बिरले ही मिलेंगे जो क्रूक्सके नामसे परिचित न हों। विज्ञान क्षेत्रमें ऐसे बहुत हुये हैं जिन्होंने इतने अधिक समय तक वैज्ञानिक सेवायें कीं। क्रूक्स ने ६७ वर्ष तक वैज्ञानिक अनुसन्धानों पर लेख लिखे। पाठक इस ही बातसे अनुमान लगा सकते हैं, कि इस कार्यका करने वाला कितना बड़ा व्यक्ति होगा। क्रूक्सकी जीवनीका इतनी सी जगह में लिखना बड़ा ही कठिन होगा। यहाँ पर केवल वही मुख्य बातें जिनसे कि क्रूक्सका नाम सर्वदा वैज्ञानिक संसारमें जीवित रहेगा लिखा जायगी।

इस महापुरुषका जन्म १७ जून सन् १८३२ ई० को हुआ। इसके पिताका नाम जोसेफ क्रूक्स था।

जिनका जन्म १७६२ में हुआ था। इसकी माता का नाम मेरी स्काट था। क्रुक्स अधिकतर अपनी मातासे मिलता था, और उसके स्वभावमें माताका ही प्रभाव अधिक पड़ा था। अपने बचपनमें क्रुक्स ने कोई मुख्य शिक्षा नहीं पाई थी। उसके पिता ने चाहा कि वह शिल्पका कार्य करे, परन्तु क्रुक्सको प्रयोग करना अधिक मनोरञ्जक प्रतीत होता था। इसी विचारसे वह प्रो० हाफमैनकी अध्यक्षतामें काम करनेके लिये रायल कालेज लन्दनमें चला गया। यहां पर १८५१ में क्रुक्स का पहिला लेख प्रकाशित हुआ। इस लेखका हाफमैन पर बड़ा असर पड़ा यहां तक कि उसने इसको जर्मनमें भी छपवाया। यहां पर वह हाफमैनका सहकारी नियत किया गया और १८५० ई० तक इस पद पर बड़े उत्साहके साथ कार्य करता रहा, और १८५५ में चेस्टर ट्रूनिंग कालेजमें अध्यापक नियुक्त हुआ।

सन् १८५६ में क्रुक्स ने अपना विवाह ऐलन हम्फ्री नामकी एक नवयुवकी से किया जिसका वह पहिलेसे जानता था, पहिले ही से क्रुक्सको प्रकाश विज्ञानसे स्नेह था। उसने इस पर कुछ लेख भी लिखे थे। इसके कुछ दिनों पश्चात् बुनसन और करशाफ ने त्रिपाश्वर्क का महत्व तत्वों का पहचाननेमें जताया। यदि किसी धातुका लवण उबाला रक्खा जाये और इस उबालासे जो प्रकाश होता है उसको त्रिपाश्वर्क पर फेंका जाय, तो बिम्ब में एक मुख्य रेखाये आती हैं जो कि केवल उसी तत्वसे सम्बन्ध रखती हैं। इस आदेशको ध्यानमें रखते हुये बुनसन और करशाफ ने डरकॉम चश्मेके पार्नामें लालम् तत्व निकाला था। क्रुक्स ने भी इस किरण-चित्र-दर्शकका प्रयोग किया। शशिम धातु का एक खनिज जो कि क्रुक्सका हाफमैन ने दिया था क्रुक्सके पास था। उसने इसके साथ नये यन्त्र पर प्रयोग किये। क्रुक्स ने बिम्बमें एक हरी रेखा देखी और कहा कि यह नई रेखा किसा दूसरे तत्वकी है, जो अभी तक नहीं खोजा गया

है। यह लेख "केमीकल न्यूज" में ३० मार्च १८६१ में प्रकाशित हुआ, और इस तत्वका नाम थैलियम् रक्खा गया जिसको हिन्दीमें थैलम् कहते हैं। पहिले पहिल यह कहा गया कि यह नया तत्व गन्धकसे सम्बन्ध रखता है, परन्तु क्रुक्स इस बात को अधिक नहीं मानता था, इस तत्वको निकालने पर सर्वजातीय प्रदर्शनी पर क्रुक्स को एक पदक मिला था।

इस नये तत्वके स्वभाव बड़े अनोखे थे, क्योंकि इसकी सूरत बिल्कुल सीसम् जैसी होती है, और घनत्व भी इसीसे मिलता जुलता है। यही नहीं, बहुत सी बातों में इसके योगिक चार धातुओंसे भी मिलते हैं। इस तत्वके निकालने से क्रुक्स वैज्ञानिक जगतमें विख्यात हो गया और १८६३ में जब वह ३१ वर्षका का था रायल सोसाइटीका फेलो (F. R. S.) चुन लिया गया। इस तत्वको निकालनेके पश्चात् दूसरा कार्य इसका भौतिक व रसायनिक स्वभावोंको ज्ञात करना था। क्रुक्स ने इसका परमाणु-भार निकाला जिसमें उसको बड़ी ही सावधानतासे कार्य करना पड़ा। यह कार्य उसने थैल-नोपेट का संश्लेषण करके किया। तुला और तौल इत्यादि सब यन्त्र अधिक सावधानासे ठीक किये गये। पाठकोंको यह विदित होना चाहिये कि क्रुक्स को ठीक से ठीक बात निकालनेमें ही हर्ष प्राप्त होता था। यही उसकी सबसे बड़ी जीत थी।

शून्यमें तोल का प्रयोग करने में एक और अद्भुत बात पर ध्यान पड़ा जिसमें कि क्रुक्स कई वर्ष तक लगा रहा और विकिरणमापक (Radiometer) के आविष्कार का कारण हुआ। इस आविष्कारकी सूचनाका लेख रायल सोसाइटी को २० मार्च १८७५ ई० को दिये गये। उसी वर्ष वार्षिक उत्सव पर क्रुक्सको रायल पदक प्रदान किया गया। पदक देते समय प्रधान ने क्रुक्सकी बहुत प्रशंसा की और इस यन्त्र की महिमाको बताया। इस यंत्रमें चार पतली पतली

पट्टियाँ एक सुईके आधार पर लगी रहती हैं; जो एक ओर काली और एक ओर सफेद हांती हैं। इस यन्त्रके कार्य्यक्रमको समझानेके लिये बड़े बड़े वैज्ञानिकों ने चेष्टा की। अन्तमें डा० जान्सटोन स्टोनी ने इस उलझनको ढल किया और बनाया, कि इन पट्टियोंका घूमना भीतर वाली गैसके अणुओं के कारण है, जो कि दोनों पट्टियों पर भिन्न भिन्न असर रखते हैं। गैसोंके स्वभावसे कुक्सका पक्का विचार हो गया था कि यह प्रकृतिको चौथी दशा है और बनाया कि यह साधारण गैससे उतना ही अन्तर रखती है जैसा कि साधारण गैस द्रवसे रखती है।

गैसोंमें विद्युत् विलसनकी घटनासे कुक्सको अधिक आकर्षित किया। यह एक बिल्कुल साधारण बात थी जिस पर कुक्सकी दृष्टि पड़नी आवश्यक थी। उसने प्रकृतिको चौथी दशा पर फिर एक लेख लिखा। साथ साथ ऋणोदके पास अंधेरे मण्डल पर भी अपने विचार प्रगट किये, यह अंधेरा मण्डल उ्यों उ्यों शून्य बढ़ता जाये, बढ़ता है, और शीशोंकी दीवारों परकी दमक कम होती जाती है, और अन्तमें समाप्त हो जाती है। बिजलीोदके पासका अंधेरा मंडल कुक्सके नाम पर कुक्स-अंधेरा-मंडल या श्यामपुट कहलाता है।

इसके पश्चात् कुक्स ने शून्यित गैसोंके स्वभाव पर अधिक वेगसे कार्य्य आरम्भ कर दिया क्योंकि उसकी इच्छा तो प्रकृतिको चौथी दशा पर इतनी प्रबल हो गई थी कि उसका हर समय यह दशा हो दिखाई देती थी, और साथ साथ में ऐसी गैसों की ताप-चालकता और स्निग्धता पर भी प्रयोग किये और उनका अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। उसका यहभी कहना था कि ऋणोदसे जो कण निकलते हैं, वह आयोवक दशामें होते हैं।

इसके बाद फिर उसने किरण-चित्र-दर्शकको उठाया और कुछ खनिजों पर कार्य्य आरम्भ किया जैसे 'इट्रिया'। इन सब अनुसन्धानोंसे कुक्स ने

तत्वोंके स्वभाव पर विचार प्रकट किये और "अर्ध तत्वों" का विचार किया, इससे यह बात निकली कि एक तत्वके सब परमाणु एक से नहीं होते। बल्कि उनका परमाणु-भार एक दूसरेसे कुछ ही अन्तर रखता है। उस समय यह विचार बड़ा ही अद्भुत और अवैज्ञानिक विदित हाता था, परन्तु समय ने बता दिया, कि उसके विचार कहां तक ठीक थे। प्रो० ऐस्टनके समस्थानिक अर्ध-तत्वोंके विचारका पूरा प्रमाण दे रहे हैं। उस समय तक रश्मिशक्तिक विज्ञानका जन्म भी नहीं हुआ, जब कि कुक्स ने ऐसे बड़े विचार की आलोचना की थी। धन्य है, उस मस्तिष्कको जिससे वैज्ञानिक विषय बिना किसी प्रमाणके ठीक ठीक रूपमें प्रगट होते थे। शून्यित गैसोंके प्रयोगों पर रायल सोसाइटी ने कुक्स को डेवी पदक प्रदान किया।

१८९४ और १८९५ में आलबीम् और हिमजन के ज्ञात होनेसे एक नये क्षेत्रकी स्थापना हुई। यह दोनों गैसों कुक्स को दो गई थीं क्योंकि वह तो उस समय इंग्लिस्तान में किरण-चित्रणमें सर्वोपरि था, और उसके प्रयोगोंसे वायुमण्डल और बनाये हुये हिमजन की समानता पूर्णरूपसे मानली गई।

सर जामेफ ज्ञान टामसन ने ऋणोद किरणोंके स्वभावको भली प्रकार समझाया, और बतलाया कि इसके कण परमाणुओंसे भी छोटे होते हैं, और जिनको अब हम ऋणानु कहते हैं। इस अनुसन्धानके पश्चात् कुक्स ने यह समझाया कि जिसका मैं विकिरण प्रकृति कहता था वास्तवमें ऋणानु हैं।

रश्मि-शक्ति-विज्ञान के आविष्कार होने पर कुक्स को अपने अनुसन्धानोंका एक बड़ा अच्छा अवसर मिला। उसने पिताकमके यौगिकों पर बड़ा महत्व पूर्ण कार्य्य किया और रश्मिम् के उत्पत्ति-पदार्थ पर कुक्सने अपना कार्य्य आरम्भ कर दिया

और एक यंत्र निकाला जिसका नाम स्पिनथेरास्कोप (Spinthariscopes) रखा जिसके द्वारा सिन्टी-लेशन गिने जा सकते हैं क्योंकि प्रत्येक पलका कण एक तड़ित् उत्पन्न करता है। इस प्रकारके अनुसन्धानों में वह लग-भग बीस वर्ष लगा रहा। दुष्प्राप्य-पार्थिवों पर क्रुक्स ने अच्छे अनुसन्धान किये, विशेष कर स्कन्दम् पर जो कार्य किया वह अतिश्रेष्ठ है, जिसके कारण इस तत्व को ठीक स्थान मिला है। १९०८ में क्रुक्स ने इन्द्रम् और ओड़म् धातुके शीत स्वभाव का दर्शाया और १९१२ में पररोप्यम् जानिकी धातुओं को आपेक्षिक-उड़नशीलता पर लेब प्रकाशित किये।

सन् १९०६ में क्रुक्स ने काँचके बनाने वाली सभा (Glass works Cataract Committee) के साथमें कार्य आरम्भ किया। इसके सम्मुख प्रस्तुत समया यद् थी कि एक ऐसा काँच बनाया जावे जिसमें से गरम पिघले हुये काँचकी किरणें न निकल सकें क्योंकि इनसे कार्यकर्ताओंका बड़ी हानि होती थी। इस कारण बहुतसे औषिदों के स्वभाव पर कार्य किया गया क्योंकि काँच ऐसा होना चाहिये जिससे कि तापकिरण भी न जा सकें और न पराकासनी किरणें ही जा पायें। साथ ही साथ उसका रंग इतना कम होना चाहिये कि वह चश्मेके प्रयोगमें लाया जा सके। इस समस्या पर क्रुक्स ने बहुत कुछ प्रशंसनीय कार्य किया जिससे अधिक लाभ पहुंचा। उसकी विधि से बनाये गये काँच अब तक 'क्रुक्स ग्लास' कहलाते हैं।

वैज्ञानिक अनुसन्धानोंके अनिरिक्त क्रुक्स ने और भी बहुतसे कार्य किये, जिनसे उसकी कार्य करनेकी रुचि स्पष्ट है। जब वह नवयुवक ही था तो सरकार ने उसे कीटाणुनाशक वस्तुओं पर रिपोर्ट लिखनेके लिये नियत किया, और किस प्रकार ऐसी वस्तुएँ पशुओंमें महामारीके रोक सकती हैं; उसने दिव्योत्पत्तिकी कीटाणुनाशक वस्तु बतलाया और इसके प्रयोगके लिये समर्थन किया।

क्रुक्सको हीरेके बनानेमें भी बड़ी रुचि थी, प्रो० मीत्रायसां के हीरा बनानेके पश्चात् क्रुक्स ने भी हीरा बनाया। यदि कार्डाइटकी बची हुई वस्तु जो धमाका लगानेके पश्चात् रह जाती है, देखी जाये तो उसमें छोटे छोटे कण मिलते हैं? यह वास्तवमें हीरे होते हैं, यह किया क्रुक्स ने ही निकाली है।

दूसरा कार्य जो कि इस महापुरुषके हाथोंसे हुआ जिसके लिये संसार उसका सदा ऋणी रहेगा, कृषिरसायन के सन्धर्ममें है। उसने बताया कि यदि पृथ्वीमें नोषेत इत्यादि नोषजनीय पदार्थ डाले जायें तो पृथ्वी उपजाऊ रह सकती है। ब्रिटिश ऐसोसियेशनकी सभामें जो ब्रिस्टलमें हुई थी, सभापति—भाषण देते समय "गेहूँ समझा" पर अधिक जोर दिया था, यद्यपि इसका कुछ विरोध हुआ परन्तु तब भी यह एक बिलकुल नई और गूढ़ बात थी।

क्रुक्सका जीवन चरित्र बिना उसके स्वभाव और व्यवहार पर कुछ कहे हुए पूरा नहीं हो सकता। वह अपने विचारों में बड़ा स्वतन्त्र तथा दृढ़ था। अपने जीवनमें क्रुक्स ने आत्मा के विषय पर भी अपने विचार प्रगट किये थे, वह स्वभावसे केवल उन्हीं बातों का मानता था जो प्रयोगों द्वारा सिद्ध की जा सकती हैं। सद्व्यवहारों की तो मानो एक पूर्ण मूर्ति था। कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं। जो उसके डारमस निराश होकर आया हो। इन बातोंके होते हुये भी यह न समझना चाहिये कि जनता उसे बिना विरोध किये छोड़ देती थी। उस पर कभी कभी बड़े बड़े आक्रमण होते थे परन्तु जिस बातका उसके पूर्ण विश्वास होता था वह कभी कभी किसी के कहने सुननेसे नहीं बदलता था। अब यह विदित होता जाता है कि बहुत सी बातें जिन पर उसका विरोध किया जाता था ठीक सिद्ध हो रही हैं, अर्थात् विरोध केवल विरोधके लिये ही किया जाता था।

जो जो पुरस्कार या प्रतिष्ठायें कुक्स को प्राप्त हुईं उनका वर्णन यहां पर करना बड़ा ही कठिन होगा परन्तु कुछ थोड़ा सा कटना आवश्यक है।

सन् १८६७ में सरकार ने उसके अनुसन्धानों की प्रशंसा करते हुये उसको सरकी उपाधि प्रदान की। यहाँ यह भी याद रखना चाहिये कि कुक्स जल-परीक्षामें बड़ा ही चतुर था, और इस विषय पर सरकार सर्वदा उसकी सहायता लिया करती थी। पिछले युद्धमें कुक्स ने सरकारको वैज्ञानिक विषयों पर बड़ी सहायता की। वह कई सभाओंका सभापति रहा, जैसे केमिकल सोसाइटी लन्दन (१८८७-१८८८) विद्युत इञ्जिनयरी का इन्सटीट्यूशन, (१८८०-१८८४) ब्रिटिश एसेसोसिएशन (१८८८) केमिकल इण्डस्ट्री (१८९३) रायल सोसाइटी (१८९३-१८९५)। १८०० से १८९३ तक कुक्स रायल इन्सटीट्यूशनका अवैतनिक मन्त्री भी रहा, और रायल सोसाइटीका विदेशी मंत्री १८०८-१८९२ तक रहा। इसके अनतिरिक्त वह कई विदेशी विश्वविद्यालयों और वैज्ञानिक संस्थाओंका सदस्य था जिनका वर्णन यहां नहीं किया जा सकता। रायल सोसाइटी ने उसके डेवी पदक, रायल पदक और काप्ले पदक समय समय पर प्रदान करके उसकी और अपनी प्रतिष्ठा बढ़ायी। रायल सोसाइटी आफ आर्ट्सने उसे ऐलबर्ट पदक प्रदान किया था और १८९० में सरकारसे सब बड़ा उपाधि जो किसी वैज्ञानिकका मिल सकती है।

पाई अर्थात् आर्डर आफ मेरिट (O. M.) की उपाधिसे सम्मानित किया गया। यह तो मुख्य बातें उसकी प्रशंसाके विषयमें लिखी गई है। यदि यही विषय लिखा जाये तो एक पूरा लेख बन सकता है।

कुक्स की मृत्युसे संसारका एक सबसे बड़ा वैज्ञानिक उठ गया। यह एक शिष्या ग्रहण करने की बात है कि कुक्स अपनी मृत्युसे कुछ मास पहिले भी जो कि ८७ वर्ष की अवस्थामें हुई विज्ञान की पूर्णरूपसे सेवा करता रहा। यदि उस ८७ वर्ष के बूढ़ेमें इतनी शक्ति थी तो क्या हम लोग जो युवक कहलानेका श्रेय रखते हैं, कुछ घंटे भी विज्ञान की पूरे रूपसे सेवा नहीं कर सकते। अन्तर यही है कि वह विज्ञान देवी पर मोहित था। यह ही उसको जायदाद और पूँजा था। यदि हम लोगोंमें भी यह वृत्ति उत्पन्न हो जाये तो इसमें बिल्कुल भी सन्देह नहीं कि हम लोग भी विज्ञानकी कुछ न कुछ सेवा कर सकते हैं। यद्यपि कुक्स की अवस्था काफी हो चुकी थी। परन्तु उसके मरनेका शाक किस वैज्ञानिक को न हुआ होगा। उसके विरुद्ध पक्षके मनुष्योंको भी आँसू बहाने पड़े हैं। उसकी मृत्युका सबसे बड़ा कारण उसकी पत्नीकी मृत्यु थी जो कि १८९६ में हुई। बस इसके पश्चात् ही उसका अपनी मृत्यु दिखाई देने लगी। अन्तमें उसने १८९८ को सर्वदाके लिये इस संसारसे बिदा मांग कर वैज्ञानिक क्षेत्रका रंगभूमिमें प्राण न्याछावर कर दिये।

रसायनका क्रान्तिकारी युग और ओपजनका अन्वेषण

रसायन विद्याके पढ़ने वालोंमें कोई बिरला ही ऐसा होगा जो इस अद्भुत विद्याके प्रारम्भिक इतिहासके विषयमें थोड़ा सा न जानता हो। यह बात सब लोग जानते हैं कि रासायनिक समय से पहिले वैज्ञानिकोंका मुख्य उद्देश्य नीची श्रेणी की धातुओं (लोहा, तांबा) से सोना बनानेका था, इस समय को कीमिया-काल (Alchemical period) कहते हैं। इस समयके पश्चात् एक दूसरा काल आया जिसको चिकित्सारसायनकाल (Iatro-chemical Period) का नाम दिया जाता है। इस समयके रसायनज्ञोंका मुख्य उद्देश्य रसायन को वैद्यकके रूपमें पढ़ना था। इस समयमें वान हेलमण्ट और वैसल वैलेण्टिन जैसे महा पुरुष हुये। इनके पश्चात् एक बड़ा ही अद्भुत समय आया जो फ्लोजिस्टन काल (Phlogiston Period) के नामसे विख्यात है। इस समयके व्यक्तियोंमें बेकर और स्टालके नाम सर्वोपरि हैं। इन लोगों का कथन था कि जब कोई वस्तु जलती है उसमेंसे फ्लोजिस्टन निकल जाता है, और कैल्कस (Calx) रह जाता है जिसको हम लोग अब ओषिड (Oxide) कहते हैं। इसी प्रकार और बहुत सी रासायनिक प्रक्रियायें समझाई गई थीं। किस प्रकार फ्लोजिस्टन सिद्धान्त को गलत सिद्ध किया गया इस लेखमें बताया जायगा। साथ ही साथ उस समयके कुछ महान् व्यक्तियों का वर्णन भी दिया जायगा।

इस समयमें रसायन संसारमें पांच मनुष्य सर्व प्रधान रहे हैं; ब्लैक, कैवेंडिश, प्रिस्टले, शीले और लैवाशिये। इनके जीवन चरित्र और अनुसन्धानोंको ठीक ठीक बतानेके लिये इन लोगों का वृत्तान्त पृथक् पृथक् लिखना उचित समझा गया है।

जोसेफ ब्लैक (१७२८-१७८६)

ब्लैक का जन्म १७२८ में स्काटलैण्डमें हुआ था। वह पहिले एक डाक्टरके रूपमें कार्य करता रहा परन्तु फिर ग्लासगो विश्वविद्यालयमें आचार्य नियुक्त हुआ। ब्लैक का मुख्य कार्य मगनीस कर्बनेत पर हुआ। पहिले वह फ्लोजिस्टन सिद्धान्त का मानने वाला था परन्तु लैवासियेके नये सिद्धान्तके पश्चात् वह लैवासिये का अनुगामी हो गया और उसको अधिक सहायता पहुँचाई। यह बहुत दिनोंसे विदित था कि खटिक कर्बनेत को गरम करनेसे दाहक त्वा बन जाता है। उस समय इन बातोंको इस प्रकार समझाया जाता था। गरम करनेसे आगके कण खटिक कर्बनेतमें मिल गये हैं और इस कारण वह दाहक बन गया है। परन्तु १७५५ में ब्लैकके लेखसे सर्व जगत को इन बातोंका मुख्य कारण विदित हुआ। उसने मगनीस कर्बनेत (मेगनीसिया ऐल्बा) को गरम करके मगनीस ओषिड (मेगनीसिया आस्टा) बनाया। कर्बनेतों को साधारणतया उस समय मध्यम (Mild) त्वा कहते थे और ओषिडोंके घोलको दाहक त्वा। इस योगसे ब्लैकने दिखाया कि किस प्रकार कर्बनेत से ओषिड बन जाता है। साथ ही साथ मगनीस कर्बनेत का भार गरम करने पर आधा रह जाता है।

२. गन्धकाम्लके साथ गरम करनेसे मगनीसिया ऐल्बासे मगनीस गन्धक (ऐप्सम लवण) बनता है और एक गैस निकल जाती है।

३. परन्तु मगनीस ओषिड गन्धकाम्लके साथ बिना किसी गैसके निकले ऐप्सम लवण देता है।

४. ऐप्सम लवणके घोलमें जब पांशुज कर्बनेत डाला जाता है, तो मेगनीसिया ऐल्बा अवक्षेपित हो जाता है।

इन प्रयोगों को देख कर पाठकों को पता लग जायगा कि किस प्रकार ब्लैक ने इन सब बातों को ठीक और नये रूपमें समझाया। दूसरे और तीसरे

से यह जताया कि मेगनीसिया ऐल्बे और मगनीस ओषिदमें केवल यही भेद हैं कि ऐल्बेसे अम्लोंके साथ कर्षण द्विओषिद जिसे संयुक्त वायु (Fixed air) कहते थे निकली है परन्तु मगनीसिया अस्टा से कोई गैस नहीं निकलती। इस लिये ऐल्बेमें संयुक्त वायु होनी चाहिये जो गरम करने पर निकल जाती है।

ब्लैक ने इन प्रयोगों को फिरसे दोहराया और बिल्लोर पत्थरके साथ भी करके देखा। उसे प्रत्येक दशामें यही फल मिले। यहीं से फ्लोजिस्टन सिद्धान्तके विरुद्ध नींव पड़नी है। जब एक बार लेवासियेने इसको सिद्ध कर दिया ब्लैक ने तुरन्त ही उसको अपना लिया और साथ २ उसकी सहायता भी की। अब हम एक दूसरे व्यक्ति का वृत्तान्त देंगे जिसके अनुसन्धानसे फ्लोजिस्टन सिद्धान्त को बड़ा भारी धक्का पहुँचा।

जोसेफ प्रिस्टले (१७३३-१८४०)

प्रिस्टले का जन्म १३ मार्च १७३३ को यार्कशायरके पास फ्रील्डहेडमें हुआ। उसका स्वास्थ्य बहुधा अच्छा नहीं रहता था। इसी कारण उसको किसी स्कूलमें पढ़ने नहीं भेजा गया परन्तु घर पर ही पढ़ानेके लिये उसके पिताने एक अच्छे आचार्य को नियुक्त किया। यद्यपि उसकी पढ़ाई में बहुत सी बाधाएँ रहीं तो भी उसको पुस्तकें पढ़ने का बड़ा ही चाव था। इसी समय उसने कुछ पुस्तकें प्राकृतिक विषयों पर भी पढ़ीं। १७५५ में वह नीडहेम मारकेट में पादरी हा गया। इस कार्य में उसे अधिक सफलता प्राप्त नहीं हुई क्योंकि स्वभावतः उसमें वक्तुता देने की शक्ति नहीं थी। रासायनिक विषयोंमें अधिक प्रेम होनेके कारण प्रिस्टलेने पादरी का कार्य छोड़ दिया और रसायन क्षेत्रमें कूद पड़ा जिसका कि उस जैन प्रयोगिक की आवश्यकता थी। १७६६ में रायल सोसाइटीने उसे अपना सदस्य चुन कर सम्मानित किया और १७७२ में फ्रांस का वैज्ञानिक सभा ने

अपना सदस्य बनाया। इसके एक वर्ष पश्चात् प्रिस्टले लार्ड शेतर्बनका साहित्य-सहायक हा गया।

प्रिस्टले अनेक प्रकार के विषयों पर कार्य करता था। उसने बहुत सी पुस्तकें वेदान्तिक विषयों पर लिखीं परन्तु रसायन के लिये उसका पुस्तक “भिन्न भिन्न प्रकार की वायुओं पर प्रयोग” ही अधिक लाभदायक है। प्रिस्टले का मत था कि सब अनुसन्धान भाग्य और अवसर पर निर्भर हैं।

सबसे बड़े महत्वका कार्य जो प्रिस्टले ने किया वह न्यूमेटिक थालीमें पानी के बजाय पारदम् का रखना है। इससे वह बहुत गैसों जो पानीमें घुल जाती थीं बना सका जैसे उद्दहरिकाम्ल, गन्धक द्विओषिद और अमोनिया इत्यादि। उसने उद्दहरिकाम्ल का नाम अम्ल वायु और अमोनियाका नाम क्षार वायु रक्खा। उसका ख्याल था कि दोनोंके मिलानेसे शिथिल वायु बन जावेगी और इस प्रकार अमोनियम हरिद बनाया।

उसने अमोनिया में विद्युत तड़ित् चलाया जिससे कि उद्जन निकला। इस प्रयोगसे उसने अमोनियाकी बनावट जनाने की चेष्टा की थी परन्तु कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई।

उसने श्वासोच्छ्वास (Respiration) और जलने (Combustion) में समानता दर्शाई और १७७२ में जब कि उसने ऑपजनको विदित भी नहीं किया था, वृत्त जीवन और प्राणि जीवनका व्युत्क्रम सम्बन्ध जताया। क्योंकि उसने बतलाया कि जिस हवामें एक मोमबत्ती अपने आप जलते जलने रुक गई हो यदि एक पोधा रक्खा जाय तो फिर यह प्राणि जीवनके योग्य हो जाती है। इस प्रकार प्रिस्टलेने “प्रकाश संश्लेषण” की नींव डाली।

१७७४ में प्रिस्टले को एक बड़ा भारी ताल (Lens) मिला। उसके मिलते ही उसने इसकी सहायतासे जो कोई वस्तु उसे मिल सकी गरम

करनी आरम्भ की। इस प्रकार जो गैसें उनसे निकलीं उनको इकट्ठा करना उसकी मुख्य मनोकामना थी। जैसा कि कहा जा चुका है, वह पानीके बजाय न्यूमेटिक थालीमें पारदम्ब का प्रयोग करता था, इस प्रकार उसने ओषजन तैयार किया।

उसने अपनी पुस्तकमें इस प्रकार वर्णन किया है—“इन यन्त्रकी सहायतासे मैंने बहुतसे प्रयोग किये जिनका वर्णन दूसरी जगह पर मिलेगा। १ अगस्त सन् १७७४ को मैंने पारद-आपिद से एक नौन निकाली, जो कि इस तालकी सहायता से बड़ी सुगमतासे निकलती है, अपनी वस्तुओं से तीन या चार गुनी बना कर मैंने इसमें पानी जाने दिया परन्तु क्या देखा कि यह पानीमें नहीं घुलती है, परन्तु मुझे एक बात देख कर बड़ा विस्मय हुआ जिसका वर्णन करना अति कठिन है कि एक मोमबत्ती इसमें बड़े प्रकाशसे और वेगसे जलने लगी। इन सब बातोंको समझानेमें मैं भोचक्का रह गया।”

प्रिस्टले ने नई गैसका नाम फ्लोजिस्टन रहित वायु रक्खा। उसका विचार था कि इस वस्तु से ही फ्लोजिस्टन मिल जाता है जब कि वह किसी वस्तुके गरम करनेसे निकलता है। उसने नाषजन का नाम “फ्लोजिस्टन सहित वायु” रक्खा। यदि यह ठीक है तो नाषजन वस्तुओंके जलनेके पश्चात् प्रगट होना चाहिये, परन्तु इस बातका उसे ख्याल नहीं था। शीले के समान प्रिस्टले भी अपने अनुसन्धानके महत्व को ठीक न समझ सका। उसको इतना विश्वास था कि कभी उसके विचार में इस बात ने स्थान नहीं पाया कि जब कोई वस्तु जलती है तो बजाय इसके कि कोई वस्तु इससे निकले, वायुमण्डल की एक वस्तु इससे मिल जाती है। यही नहीं परन्तु प्रिस्टले अन्त समय तक लैवासियेके सिद्धान्तके विरुद्ध रहा और फ्लोजिस्टन सिद्धान्त का समर्थन करता रहा।

प्रिस्टले को फ्रान्स क्रान्तिकारी दलके भगड़ों में पड़ कर इङ्ग्लैंडसे अमेरिका चला जाना पड़ा क्योंकि यहाँ पर लोगों ने मत-विरोध होनेके कारण उसका घर इत्यादि सब जला दिया था। बेचारा प्रिस्टले नारदम्बर्गलैंडमें जाकर रहा और वहीं पर उसने १४ फरवरी सन् १८०४ को सर्वदाके लिये इस संसारसे बिदा मांगी। प्रिस्टले के इस अनुसन्धान के पश्चात् ही रसायन विद्या ने अपना मुख्य रूप धारण किया, इसलिये उसको रसायन शास्त्रका निर्माता भी कहा जा सकता है।

हेनरी कैवेंडिश (१७३१—१८१०)

कैवेंडिश का जन्म १७३१ में नोसमें हुआ, यह डेवेनशायर के तीसरे ड्यूक का भतीजा था। विज्ञानके क्षेत्रमें बहुतसे ऐसे व्यक्तियों ने कार्य किया है, जो बड़े धनवान थे जैसे राबर्ट बायल। कैवेंडिश अपने समय में इङ्ग्लैंड के सबसे बड़े धनवानों में से था परन्तु उसका प्रेम वैज्ञानिक विषयों के लिये इतना था कि उसने अपना सारी आयु सर्व ऐश्वर्य को त्याग कर वैज्ञानिक देवी की पूजा की।

कैवेंडिश का महत्व पूर्ण अनुसन्धान उद्जन की खोज करना है। यद्यपि उद्जनके विषयमें पेरसेलस, वानहेलमण्ट इत्यादि भी कुछ जानते थे परन्तु इन वस्तु की पूरी खोज करने वाला यही महापुरुष था। उसने इसका नाम “जलने वाली वायु” रक्खा और बतलाया कि यही वस्तु शायद फ्लोजिस्टन हो, क्योंकि यदि एक धातुके साथ फ्लोजिस्टन मिली हुई है तो इस धातुसे अम्लके प्रभाव से फ्लोजिस्टन अवश्य निकलनी चाहिये।

प्रिस्टलेके ओषजन बनानेके पश्चात् कैवेंडिश ने १७८३ में ओषजन और उद्जनका मिलाया। इस क्रियामें उसे विद्युत् तड़ित् का प्रयोग करना पड़ा। इस प्रकार जलकी बनावट सिद्ध की गई। इसी प्रकार १७८५ में इस प्रकारके प्रयोग करते हुए उसने देखा कि नाषजन व ओषजन जब इसी प्रकार

विद्युत तड़ित्के प्रभाव पर रखे जाते हैं तो जल से मिल कर नाषिकाम्ल उत्पन्न होता है। यह एक बड़े ही आश्चर्यकी बात है कि जब कभी कैवेंडिश ने वायुमण्डल के नोषजन से प्रयोग किया तब कुछ न कुछ थोड़ा सी गैस अवश्य रह जाती थी जो कि लगभग कुल घन फुल की १/१२० थी परन्तु तब भी कैवेंडिश आलसाम् इत्यादि बहुत सी गैसों जो विलयन रैमज़े ने १०० वर्ष पश्चात् निकालीं, न निकाल सका।

यद्यपि कैवेंडिश ने उद्जन निकाला था परन्तु खेद श्री बात है कि वह भी प्रिस्टले के समान प्लोजिस्टन सिद्धान्तका उपासक बना रहा। इस सिद्धान्त की मिटा देनेके लिए उसके पास काफी सामग्री थी। यह कुछ अंग्रेज़ोंका स्वाभाविक गुण भी है कि जिस बात पर चिपट जाते हैं, उसे दुराग्रहवश नहीं छोड़ते। प्रिस्टले ने ओषजनका नाम फ्लोजिस्टन रहित वायु रख दिया था और यह उद्जनसे मिल जाती थी। कैवेंडिशको पूरा पूरा विश्वास हा गया था कि यह प्लोजिस्टन है। वह लैवासियेके कार्यय के विरुद्ध नहीं था पर तो भी अपनी सम्मति प्लोजिस्टन सिद्धान्तके ही पक्षमें रखता था।

कैवेंडिश ने वायु का विश्लेषण किया। उसने बताया कि वायुमें नोषजन व ओषजनमे ७६.१६ : २०.६६ का सम्बन्ध है। पाठकोंको यह जान कर हर्ष होगा कि अभी तक इन अंकोंमें कुछ अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है। वर्तमान अंक यह हैं ७६.०४ : २०.६६।

कैवेंडिश ने भौतिक शास्त्रमें बड़े उच्चकाटिके अनुसन्धान किये। उसका मुख्य कार्य पृथ्वीका घनत्व निकालना है। उसका यह प्रयोग और उसके फल अभी तक ठीक माने जाते हैं। कैवेंडिश बड़ा ही श्रद्धालु व्यक्ति था। वह किसीसे मिलना नहीं चाहता था। वह इतना लज्जावान था कि कभी किसी सभामें नहीं बोला। रायल सोसाइटीकी बैठकोंमें यदि कोई उससे भाषण देनेकी प्रार्थना

करता तो वह तुरन्त वहाँसे घर भाग आता। उसके अपने कार्यके अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं भाती थी इतना अमीर होने पर भी साधारणसे साधारण रूपमें जीवन व्यतीत करता था। संसारमें ऐसे उच्च विचारोंके मनुष्य सर्वदा जन्म नहीं लेते। सन् १८१० में कैवेंडिश ने सर्वदाके लिए इस संसार को छोड़ दिया। पाठकों का जानना चाहिये कि इस महान् व्यक्तिकी स्मृतिमें कैमब्रिजमें एक बड़ी भारी भौतिक प्रयोगशाला खुली हुई है, जो संसार में सबसे उच्च भौतिक प्रयोगशाला है। उसके आचार्य कतार्क मेक्सवेल, लार्ड रेल, सर जोसेफ जान टामसन और लार्ड रदरफोर्ड जैसे महाश्रुति हुये हैं, जिनके अनुसन्धानों ने जगत्को परिवर्तित कर दिया है। आजकल लार्ड रदरफोर्ड इस कैवेंडिश प्रयोगशाला के मुख्य आचार्य हैं।

कार्ल विलियम शीले (१७४२-१७८६)

संसारमें शीलेके समान बहुत ही कम वैज्ञानिक हुये हैं, जिनमें प्रयोग और अनुभव की इतनी बड़ी शक्ति विद्यमान थी। वह अपनी शताब्दी का सब से बड़ा आविष्कारक हुआ है। यह और खेद की बात है कि वह इतनी अल्प आयुमें ही संसारसे बिछुड़ गया। उसका जन्म १६ दिसम्बर १७४२ में स्ट्रालसण्ड में हुआ।

यह एक बड़े निर्धन घरका मनुष्य था। १४ वर्ष की अवस्थामें एक डाक्टरके पास नाँकर हो गया। यहाँ ८ वर्ष रह कर १७७० से १७७५ तक मेलमोयलके पास रह कर १७६५ में स्ट्राकहोसम चला गया। सन् १७७० से १७७५ तक अपसालामें रहा, फिर वहाँसे कोपनिग जाकर उसने एक छोटा सा घर मोल ले लिया। यहाँ पर अपनी मृत्यु तक वह प्रयोगमें लगा रहा।

शीलेके अनुसन्धान

सबसे पहिले शीले ने मेगनासिया न्यागरा पर प्रयोग किये। उसने सबसे पहिले भारम् और

मांगनीज्ञकी उत्पत्तिको दर्शाया और हरिन् व ओष-जनकी खोज की। मांगनीज्ञ द्विओषिदसं बहुतसे यौगिक बनाये जो अब तक महत्वपूर्ण माने जाते हैं। शीले ने वास्तवमें ओषजन प्रस्टलेसं दो वर्ष पहिले तीन चार प्रकारसे बनाया था परन्तु उसके अनु-सन्धान छुप नहीं सके थे, इस कारण ओषजनके आविष्कारके प्राथमिक श्रेयके विषयमें झगड़ा उठा करता है।

शीले ने वुनफ्रामम् और सुनागम् धातुओं को विदित किया। जिस खनिजसे शीले ने सुनागम् निकाला, वह उस समय ग्रेफाइट समझी जाती थी। शीले ने इन दोनों का भेद बताया और दिखलाया कि ग्रेफाइट कर्वनका ही एक रूप है। शीले ने ही सबसे पहिले उदगन्धिदके पूरे पूरे ज्ञान पर कार्य किया और संज्ञीणम्के यौगिकों पर कार्य करने समय एक नया रंग निकाला जो कि 'शीलेका हरा रङ्ग' अथवा ताम्रम् संज्ञाणितके नामसे प्रसिद्ध है। संज्ञीणम् के थोड़ी सी संख्यामें जाननेके लिये संज्ञीणिन् विदित की।

कार्बनिक क्षेत्रमें उसके अनुसन्धान कुछ कम नहीं हैं। उसने सबसे पहिले मूत्रिकाम्ल और मधुरिन्के विदित किया और कार्बनिक अम्लोंके के साफ करने और निकालनेकी एक क्रिया बतलाई जो कि अब तक भी काममें लाई जाती है। वह यह है कि पहिले इन अम्लोंके खटिकम् तार बनाये जायें और इन तारों को गन्धकाम्लसे विभाजित किया जाय। इस प्रकार उसने काष्ठिकाम्ल, हमलिकाम्ल, मेविकाम्ल, माजुफलिकाम्ल, और नान्बुडकाम्ल बनानेमें इस क्रिया का प्रयोग किया। उसने खट्टे दूधसे दुग्धकाम्ल बनाया और साथ ही साथ विगीण्डिकाम्ल बनाया।

उसके अनुसन्धानोंमें से एक मुख्य कार्य प्रशियन नील का है क्योंकि इसके कारण उद्दश्यामिकाम्लकी उत्पत्ति विदित हुई जिसका कि उसने पूरा वर्णन दिया है, उसका गन्ध, स्वाद

इत्यादि। परन्तु वह इसके विषयमें स्वभाव को नहीं जानता था। यह पढ़कर पाठकों को विदित हो जायगा कि शीले ने कितने थोड़े समयमें कितना अधिक कार्य किया।

१७७७ में शीले ने एक पुस्तक "वायु तथा अग्नि" पर लिखी जिसमें उसने अपने विचारोंका पूरा वर्णन दिया है। शीले ने बहुतसे प्रयोग किये जिनसे विदित होता है कि वायु दो वस्तुओंसे बनी है जिनमेंसे एक जलनेमें सहायता करती है जिसका नाम "अग्नि वायु" रक्खा। दूसरीका नाम "अशुद्ध वायु" रक्खा। वायुके एक विदित आय-तनमें किसी वस्तु को जलाकर और बचा हुई वायु का आयतन नाप करके उसने दोनोंका अनुपात निकाला। इसके पश्चात् जलनेकी क्रिया समझाई। अग्निवायुका क्या हा जाता है? जिस समय कोई वस्तु जलती है तो प्रकाश और ताप उत्पन्न होता है। उसका कहना है कि अग्निवायु फ्लोजिस्टनसे मिल कर प्रकाश और तापके रूपमें निकल जाती है, क्योंकि अग्निवायु जलमें भी नहीं घुलती। फ्लोजि-स्टन सिद्धान्तके ठीक सिद्ध करनेके लिये उसने एक प्रयोग और दिखाया। जब ताम्र-ओषिद को (जिसमें फ्लोजिस्टन नहीं है) नोषिकाम्ल से मिलाते हैं, तो कोई गैस नहीं निकलती परन्तु जब ताम्रम् धातु (जिसमें फ्लोजिस्टन है) से मिलाते हैं तो फ्लोजिस्टन निकलती है, क्योंकि इस प्रक्रियामें लाल लाल धुआँ निकलता है। उसने रजत-हरिद पर प्रकाशका प्रभाव भी बताया और इस क्रियाको भी फ्लोजिस्टन सिद्धान्त से सिद्ध किया।

शीलेक अनुसन्धानोंका इतना थोड़ा जगहमें वर्णन करना अति कठिन है। यह तो एक प्रकारकी सूची दी गई है। इसको ही देख कर पाठक अवश्य जान जायेंगे कि वह क्या ही अद्भुत प्राणी था जिसके मस्तिष्कसे इतनी बातें जब कि रसायन महा अन्धकार में पड़ा था निकलीं। यदि कोई रसायनिक उसके जोड़ का कहा जा सकता

है, तो केवल एमिल फिशर, जिसका वृत्तान्त आगे दिया जायगा। १७८६ में ४४ वर्ष की युवा अवस्था में शीले का देहान्त हुआ।

ऐन्तोयें लोरेँ लैवासिये (१७४३-९४)

इस महा पुरुषका जन्म २६ अगस्त १७४३ को पेरिसमें हुआ। यह मेज़ारिन कालेजमें पढ़ने भेजा गया था। यहाँ पर केवल लैवासियेके अनुसन्धानों का ही वर्णन किया जायेगा। फ़्रांज़िस्टन सिद्धान्त को जड़से मिटा देनेको सफलता का मुख्य कारण उसका तराजूका प्रयोग है। यदि लैवासिये ने तराजूका प्रयोग न किया होता तो कदापि इस दशको न पहुँच सकता।

ऐलकेमीया समयके लोग यह समझने थे कि जलसे मिट्टी बन जाती है। लैवासिये ने इसके विरुद्ध स्वर उठाया। उसने कोई तीन मास लगभग काँचके एक बर्तनमें पानी गरम किया। गरम करने के पहिले सबको तोला और ऐसा गरम किया कि पानी उड़ न जाये। प्रयोगके पश्चात् तोलनेसे विदित हुआ कि सबका सब वज़न उतना ही है। न कम न अधिक, फिर सब जलको जला कर जो बचा उसको तोला और पानीकी तौल विदित हो गयी। इनसे विदित हुआ कि पानी और सफेद वस्तु का बोझ केवल पहिले पानीसे अधिक था अथवा नई चीज़में कोई न कोई चीज़ बर्तनमेंसे आई फिर बर्तनको तोला उसका बोझ उतना ही कम था जितना कि पानी और उन वस्तुका बढ़ गया था। इसलिये सिद्ध हुआ कि नई वस्तु जलसे नहीं बनी बल्कि पानी और काँचके योगसे बनी है। इसी प्रकार शीले ने भी इस बातको दर्शाया था, परन्तु उसने तराजूसे काम नहीं लिया।

जलन क्रिया पर लैवासियेका कार्य

इस कार्यमें भी उसने तराजूका प्रयोग किया। सर्वदा वह प्रत्येक वस्तुको तोला करता था और तब उनके आधार अपने विचार दर्शाता था। जैसा

कहा जा चुका है, यही उसकी सफलताका कारण था। १७७२ ई० में उसने फ़्रांसकी वैज्ञानिक परिषत् को एक लेख भेजा जिसमें जलन क्रियाके प्रयोगोंका वर्णन दिया है।

“जलनेके पश्चात् गन्धकका बोझ कम होनेके बजाय बढ़ जाना है अथवा गन्धक के एक पाँडसे एक पाँडसे अधिक गन्धकाश्न मिल सकता है। ऐसा ही स्फुरके साथ होता है। यह बोझ इस कारण बढ़ जाना है क्योंकि जलने समय कुछ वायु गन्धकमें मिल जाती है”। पाठक देखेंगे कि बस यहाँसे फ़्रांज़िस्टन सिद्धान्तकी जड़ उखड़नी आरम्भ हो जाती है। लैवासिये लिखता है—“मैं समझता हूँ कि जिस प्रकार गन्धक और स्फुरमें होता है उसी प्रकार सब वस्तुएँ जब जलती हैं भारमें बढ़ जाती हैं। धातु भस्मका भा बोझ बढ़नेका यही कारण हो सकता है, बन्द बर्तनमें मैंने स्वीसम्के लाल ओषिद् (Litharge) को खूब गरम किया उसमेंसे एक वायु निकला जिसका आयतन इस वस्तुसे हजारों गुना अधिक था और सीसम् धातु उत्पन्न हो जाती है।’

ऊपरके वृत्तान्तसे स्पष्ट ज्ञान होता है कि लैवासिये ने इन प्रयोगोंका कितनी बुद्धिमानोंके साथ अनुभव किया। अब एकके पश्चात् दूसरा प्रयोग शांघ्र ही होने लगा। १७७४ में उसने वंगम् के जलने पर किये हुये प्रयोगोंका वृत्तान्त छपवाया। उसने धातु तुना हुई मात्रामें ली और एक बड़े भारी काँचके बर्तनमें बन्द कर दी। अब सबको मिला कर तौला। फिर इसके खूब गरम किया, फिर तौला, तौलमें कोई अन्तर न विदित हुआ, जब मुँह (Seal) को ताड़ा तो वायु एक दम बर्तनमें घुस गई। इससे विदित हुआ कि वंग—ओषिद् बननेमें बर्तनके भीतरकी हवा काममें आई है। उसने यह भी दिखाया कि यदि बहुत सा वंगम् बर्तनमें रक्खा जाये और चाहे कितना ही गरम किया जाये, कुछ न कुछ धातु रह जाती है,

और साथ साथ सब वायु भी काममें नहीं आती। इससे यह सिद्ध हुआ कि वायुमण्डल का कुछ भाग ही जलन क्रियामें काम आता है। उसने फिर पारदमूके साथ प्रयोग किये और दिखाया कि जितना बोझ पारदमूके वायुमें खूब गरम करनेसे बढ़ता है, उतना ही लाल पारद-ओषिदके गरम करनेसे घट जाता है, अथवा पारद-ओषिद पारदमूके वायु के साथ मिलनेसे बनती है। सन् १७७७ में उसने अपने जलन-क्रिया सिद्धान्तको इस प्रकार रक्खा।

१—प्रत्येक जलन क्रियामें प्रकाश तथा ताप उत्पन्न होता है।

२—वस्तुयें केवल विशिष्ट वायु (Air eminement pur) में ही जलती हैं। यह ओषजनका पहला नाम है।

३—यह वायु जलनक्रियामें काममें आती है और जलने वाली वस्तुका बोझ उतना ही बढ़ता है, जितना कि वायुका घट जाता है।

४—जलन क्रियासे अधिकतर जलनेवाली वस्तुयें भस्म हो जाती हैं।

यद्यपि लैवासिये इनने प्रयोगोंसे यह सब बातें सिद्ध कर चुका था परन्तु तो भी उसके विचारोंको कम लागू मानते थे। उसने जलका संगठन भी निकाला। १७८६ में उसने एक पुस्तक लिखी जिसमें फ्लोजिस्टन सिद्धान्तका पूरा विरोध किया, और अपना नया सिद्धान्त समझाया। इस पुस्तक का लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। इसको रसायनिक विज्ञान कहते हैं क्योंकि इसने रसायनिक विचारोंको बिलकुल परिवर्तित कर दिया।

उसने “परिमाण विनाशना नियम” निकाला जिसके आधार पर उसने रासायनिक समीकरण की रीति निकाली, जिससे रासायनिक विज्ञानका अत्यन्त लाभ हुआ है। कार्बनिक वस्तुओंके

विश्लेषणमें वह बड़ा ही निपुण था। उसने ही वह विधि निकाली थी, जो आजकल कर्बन और उद्जन निकालनेके काममें लायी जाती है, अर्थात् वस्तुओं पर ओषजनके प्रभावसे। इस प्रकार जो कर्बन द्विओषिद तथा जल प्राप्त होता है, उसे तेल कर गणितकी सहायता से उस वस्तुका संगठन निकाला जा सकता है।

उसके चौथे विचारमें जो ऊपर दिया हुआ है, यह विदित होगा कि लैवासियेकी सम्मति थी कि सब अम्लोंमें ओषजन अवश्य होता है। इसको “अम्लों का ओषजन सिद्धान्त” कहते हैं। इसी कारण इन वायु का नाम पहले अम्लजन पड़ा था, यद्यपि यह अब ठीक नहीं है क्योंकि अब उद्जन अम्लों का मुख्य तत्व माना जाता है, जैसा कि डेवी ने बताया। तब भी उसके समयमें यह बिलकुल ठीक था।

लैवासिये ने जीवनके सिद्धान्त पर भी दृष्टि डाली। उसका मत था कि प्रत्येक वस्तुका जीवन एक “ओषदीकरण क्रिया” है। इससे जा ताप उत्पन्न होता है उसी सामर्थ्य से मनुष्यका जीवन चलता है। जितने पदार्थ हम खाते हैं, वह पेटमें जाकर ओषदीकृत (Oxidise) होते हैं।

लैवासिये ने राज्यके कार्यों में भी बड़ा भाग लिया। वह बहुत सी समाश्रोंका सदस्य चुना गया था। जब कि फ्रांसमें राज्यक्रांति हुई तो वहाँके लोग उसके विरुद्ध हो गये और उसकी प्रयोगशाला जो सारवानमें थी जला डाली। उस पर प्रजातन्त्र राज्य की ओर से मुकदमा चलाया गया। जजों ने उसको गला कटवाये जानेका दंड प्रदान किया। तदनुसार ८ मई १७९४ में उसका शिरोच्छेदन कर दिया गया। वह महान पुरुष जिसका कि यह संसार और विशेष कर रासायनिक जगत् वर्षों कया, कभी श्रृण नहीं चुका सकता, इस निर्दयताके साथ इस संसारसे विदा कर दिया। लैवासियेको सर्व

संसार रसायन विद्याका जन्मदाता मानता है कि “यद्यपि उसका गला काटनेमें एक पल भी और वास्तवमें इसमें कोई सम्देह नहीं कि उसने नहीं लगा परन्तु उसके समान उत्पन्न करनेमें ही वर्तमान रसायन को जन्म दिया। इस घोर निर्दयताका विरोध करते हुये लैगरेञ्ज ने लिखा है, सहस्रों वर्ष लगेंगे।”

परमाणुवाद और उसका विस्तार

पिछले पृष्ठोंमें यह बताया जा चुका है कि किस प्रकार लैवाशियेके नये सिद्धान्तों से रासायनिक जगत्में क्रान्ति उत्पन्न हुई। यद्यपि पूर्णरूपसे देखा जाय तो उस समयका मौसोंका काल कहा जा सकता है, क्योंकि मुख्य मुख्य नैसै उसी समयमें बनाई गई। इसके पश्चात् वह समय आया जब कि वैज्ञानिकों की दृष्टि प्रकृति रचना पर आकर्षित हुई। साथ ही साथ तत्वोंके मिलनेके और याँगिकोंके संगठनके सम्बन्ध निकाले गये। इन सब अनुसन्धानों ने रासायन विद्याको जो कि अभी अष्टादश शताब्दी में थी एक विशेष रूप दिया। इस समयमें रासायनिक विषयोंमें गणित और भौतिकके पुरे पुरे प्रयोग करनेकी चेष्टाकी गई और अनेकानेक परिणामात्मक प्रयोग किये गये। इस कालके मुख्य व्यक्तियों का जीवन यहाँ पर संक्षिप्त रूपमें दिया जायेगा; जैसे जान डाल्टन, लुई गेलुसक, लुई थेनाड, अनेडे अवोगाड्रो, और लुई प्राउट।

जान डाल्टन

(१७६६—१८४४)

रासायनिक इतिहासमें डाल्टनका नाम उच्चकोटि के सिद्धान्तियोंमें लिया जा सकता है। यह अपने समयका एक मुख्य सिद्धान्तक पुरुष हुआ है। डाल्टनका जन्म ६ सितम्बर १७६६ में कम्बरलैंडके पास ईंग्लफोल्ड नामक ग्राममें हुआ। डाल्टन ने किसी कालेज या बड़े विश्व विद्यालयमें शिक्षा नहीं पाई। केवल ११ वर्षकी अवस्था ही में डाल्टन ने स्कूल छोड़ दिया। इसके एक वर्ष पश्चात् उसी स्कूलमें अध्यापक का कार्य करने लगा। यहाँ दो वर्ष रह कर केंडलके स्कूलमें चला गया। इस समय उसने अपने बचे हुये समयका पूरा पूरा लाभ उठाया। अर्थात् लैटिन, ग्रीकनी इत्यादि

भाषाओंका बोध किया। इसके पश्चात् डाल्टन मानचेस्टरमें रहा और कभी कभी उसने ग्लासगो और लन्दन इत्यादिमें भी व्याख्यान दिये।

डाल्टनका नाम रासायनका प्रत्येक विद्यार्थी जानता है, और जब तक रासायन विद्या जीवित है, उसके नाम की धूम मची रहेगी। प्रकृति की बनावट पर सबसे पहिले दृष्टि डालने वाला डाल्टन ही था। यद्यपि डाल्टनसे पहिले महर्षि कणाद ने अपने वैशेषिक दर्शनमें प्रकृतिकी बनावट परमाणुओं से दिखाई है तो भी वर्तमान रासायनिक जगत्को परमाणुका ज्ञान देने वाला डाल्टन ही है। उसने अपना एक नया सिद्धान्त बनाया जिसको उसके नाम पर “डाल्टन का परमाणुवाद” कहते हैं। उसकी मुख्य बातें यह हैं :—

१ प्रकृति उन छोटे छोटे कणोंकी बनी हुई है, जो किसी भी रासायनिक क्रियासे विभाजित नहीं किये जा सकते। इनका नाम “परमाणु” है।

२ प्रत्येक तत्वके सब परमाणुओंका स्वभाव, भार, आकार इत्यादि एक ही होता है, किन्हीं भी दो तत्वोंके परमाणु एकसे नहीं हो सकते।

३ जब कभी दो तत्व मिलते हैं, तब प्रत्येक तत्वके परमाणु इस क्रियामें भाग लेते हैं।

इन मुख्य बातोंको आधार मान कर डाल्टन ने अपना सिद्धान्त रचा और इसकी सहायता से प्रत्येक रासायनिक क्रियाको समझानेकी चेष्टा की। इस सिद्धान्तमें कोई मुख्य प्रयोगिक अनुसन्धान नहीं किये थे; केवल दिमागसे ही सब बातें उत्पन्न हुईं। रासायनिक क्रियाके नियमोंमें परमाणुवादके प्रयोग आगे दिखाये जायेंगे।

दूसरा मुख्य कार्य जो डाल्टन ने किया वह परमाणु-भार पर था। जिस समय डाल्टन ने यह सिद्धान्त रक्खा था, वैज्ञानिक केवल जलका ही ज्ञान रखते थे। उनको यह ज्ञात था कि जलके भीतर ओषजनका भार उद्जनसे आठ गुणा है। उस समय यह कोई नहीं कह सकता था कि जल

का सूत्र क्या होगा डाह्टन ने सीधा साधा ओ उ मान लिया और उद्जनको आधार मान कर अथवा उद्जनका परमाणु-भार १ मान कर ओषजनका परमाणु भार ८ रक्खा। इसी प्रकार ओमोनिया को ने उ का सूत्रदेकर नोषजनको ४.५ का परमाणु-भार दिया। इसी प्रकार और बहुतसे योगिकोंका लेकर तत्वोंके परमाणु-भार निकाले। पाठक देखेंगे कि डाह्टनके और इस समयके परमाणु-भारोंमें केवल गुणक का ही भेद है। उनका कारण सूत्रोंका ठीक विदित न होना है। कुछ ही क्यों न हो, यह अनुसन्धान रसायन के लिये अति ही लाभदायक सिद्ध हुआ।

डाह्टन ने रसायन-प्रक्रियाके नियम निकालने में भी मुख्य भाग लिया। यदि नोषजनके ओषिदों पर दृष्टि डाली जाय, तो एक अद्भुत बात मालूम होनी है। यदि उनके सूत्र लिखें जैसे कि $\text{नो}_2\text{ओ}$, नो ओ , $\text{नो}_2\text{ओ}_2$, $\text{नो}_2\text{ओ}_3$, $\text{नो}_2\text{ओ}_4$ तो पता लगेगा कि प्रत्येक नये योगिकमें ओषजनका एक परमाणु बढ़ता जाता है। डाह्टन ने बताया कि यदि नोषजनका मुख्य तत्व मान कर इन सब योगिकोंमें ओषजनकी संख्या निकाली जाय जो नोषजनकी दी हुई संख्यासे मिलती हो, तो ओषजन की संख्याओंमें एक अद्भुत समानुपाती सम्बन्ध मिलेगा अथवा यह समानुपाती सर्वदा पूरी पूरी संख्या होगी, भिन्न नहीं हो सकती। यह बात प्रत्येक तत्वके योगिकोंके साथ देखी जा सकती है, जैसे कबनके दोनों ओषिद। यदि कबन एक भार लिया जाय तो कबन एकओषिद और द्विओषिदमें ओषजनका अनुपात १:२ का मिलेगा, १:१, १:१ का नहीं मिल सकता। इसी कारण यह बात एक नियमके रूपमें आ गई है। पाठक देख सकते हैं। कि यह नियम परमाणुवादके आधार पर कितनी सरलता से सिद्ध होता है। ऊपर दिये तीसरे नियमके अनुसार रासायनिक क्रिया सर्वदा परमाणु में होती है। पहिले नियमके अनुसार एक परमाणु दो भागोंमें तोड़ा नहीं जा सकता। इसलिये जब

कभी कोई दूसरा योगिक बनेगा तो कमसे कम एक परमाणु अवश्य उसमें बढ़ता चाहिये। इसी कारण जब उनमें एकसे अधिक योगिक बनता है तो बढ़ने वाले तत्वकी संख्यामें पूरा पूरा समानुपात होना चाहिये। इस प्रकार जान डाह्टन अपनी आयु भर विज्ञानके विस्तारकी भरमक चेष्टा करता रहा। अन्त तक वह अपने वैज्ञानिक विचारोंसे ओत प्रोत रहा। डाह्टनके अन्तरित विज्ञान या मिट्टीयालोजी का बड़ा शाक था। वह प्रत्येक वर्ष इस विषयकी रिपोर्ट दिया करता था। मानचेस्टरमें २७ जुलाई १८४४ को डाह्टनकी मृत्यु हुई।

अमेडे अवेगाडो

(१७७६—१८५६)

अवेगाडो का जन्म १७७६ में इटलीके एक छोटेसे नगरमें हुआ था। यद्यपि बहुतसे लोगों ने अवेगाडोका बाल जावन मालूम करनेका चेष्टा की है परन्तु इस विषयमें कुछ अधिक ज्ञात नहीं है। वह बहुत दिनों तक ट्यूरिनके विश्वविद्यालयमें भौतिक शास्त्रका मुख्य अध्यापक रहा। १८११ में अवेगाडो ने अपना सिद्धान्त स्थानीय पत्रिकामें छपवाया। वह सिद्धान्त यह है कि “यदि दो भिन्न गैसोंका बराबर आयतनमें लिया जाय, और उनका तापक्रम और दबाव भी समान रक्खा जाय, तो उनमें बराबर अणु होंगे।” पाठकोंके विदित हागा कि केवल इस सिद्धान्त के ही कारण उसका नाम विख्यात नहीं है परन्तु अवेगाडो ने ही पहिली बार अणु और परमाणुका परिभाषा की और उनका अन्तर बतलाया। उसने बतलाया कि डाह्टनके परमाणु भी सबसे छोटे छोटे कण नहीं हैं बल्कि यह भी किसी और छोटी वस्तुसे बने हैं। मान लीजिये, आप बिल्वौर पत्थर लें। इसका भी सबसे छोटा कण (डाह्टन की भाषा में) अविभाजित नहीं है। यह भी तीन प्रकारके कणों ने बना है। इस प्रकार अवेगाडो ने परमाणु आर अणुओंकी ठीक ठीक व्याख्या दी। उसने डाह्टनके परमाणुओं

का अणु नाम रक्खा । यदि यह मान लिया जाये तो गेलुसाक का नियम जो आगे बताया जायगा ठीक सिद्ध हो जाता है । डाल्टन ने मरते समय तक भी इस सिद्धान्त को नहीं माना और इसके विरुद्ध ही रहा । परन्तु सन् १८६० में इटलीके प्रो० कैनी-जारी ने इस सिद्धान्तको जो ५० वर्ष तक बेसुध पड़ा रहा था जगानेका उद्योग किया, और बताया कि किस प्रकार इसके आधार पर रसायनको ठीक रूप दिया जा सकता है और परमाणु भार इत्यादि निकाले जा सकते हैं । जब जनेवामें बड़े बड़े रसायनज्ञोंकी प्रो० डूमाके सभापतित्वमें सभा हुई, तब कैनीजारी ने इस सिद्धान्त पर विज्ञापन छपवा कर बटवाये । विश्व विख्यात रसायनज्ञ लोथर मेयरका भी एक पर्चा मिला । उसने पढ़ा तो उसके महत्वको जाना और इस सिद्धान्तका भरपूर समर्थन किया । आजकल यह रसायन की एक कुंजी है । यदि यह खो जाती, तो रसायन एक कौटरासीमें पड़ा रहता । सब परमाणु भार व अणु भार इसीके आधार पर निकाले गये हैं । यों तो प्रत्येक रसायनज्ञ रसायनको अपना ऋणी बना जाता है, पर अवेगाड्रो ने तो इसकी जड़ ही को जमाया है । उसका ऋण तो एक अशुभुत ही प्रकारका है ।

जासेफ लुई गेलुमाक

(१७७८—१८५०)

गेलुमाकका जन्म १७७८ में सेण्ट लेनार्ड में हुआ । उसका पिता फ्रांस सरकार में न्यायाधीश था । गेलुमाक अपने पिताके कार्यकी अपेक्षा विज्ञानमें अधिक रुचि प्रगट करता था । इस कारण वह फ्रांसके ही पोलिटेक्नीक स्कूल में भर्ती हो गया । अपनी बुद्धिके कारण २२ वर्ष की आयु में ही विख्यात रसायनज्ञ बरथोले ने उसे अपना सहकारी बना लिया । उसके कार्यकी बुद्धिमत्ता को देखकर बरथोले स्वामीसे उसका परम मित्र बन गया ।

प्रारम्भसे ही गेलुसाक की रुचि भौतिककी और अधिक रही । इस कारण उसने गैसोंके भौतिक स्वभाव पर खोज आरम्भ कर दी । एक बार वह गुम्बारेमें बैठकर २०,००० फुट ऊंचा गया और वहाँके वायुमंडलकी परीक्षा की, वहाँकी गैसें इकट्ठा करके लाया । इन सबके उसने भौतिक स्वभाव विदित किये ।

जिस समय डाल्टन ने अपना परमाणुवाद रक्खा, उसा समय १८०८ में गेलुसाक ने परमाणु-भार के विषयमें अपने विचार छपवाये । सन १८०२ उसने एक नई बान निकाली जिसमें उसने दिखलाया कि “यदि किसी गैसका तापक्रम १° शतांश बढ़ाया जाये तो इस प्रकार आयतन उस आयतनसे जो कि वह ०° शतांश पर रखती है

१ गुना बढ़ जाता है” । इस नियमको गेलुसाक नियम कहते हैं परन्तु गेलुसाक ने इसका श्रेय चार्ल्स को भी दिया । इसलिये यह नियम दोनों व्यक्तियोंके नाम पर कहलाता है ।

गेलुसाक ने अपने सहकारी हमबोल्टके साथ गैसोंके स्वभाव पर बहुत कार्य किया । १८०५ में इन दोनों ने ओषजन और उद्जनके यौगिक अनुपात निकालनेकी चेष्टाकी, और बहुत कुछ कार्य करने के पश्चात् यह बताया कि चाहे कितनी ही ओषजन और उद्जन ली जावे इन दोनोंका आयतन १:२ के अनुपातमें मिलता है, अर्थात् ओषजनकी एक घन शतांशमीटर उद्जनकी २ घन शतांशमीटरसे मिलती है । ऐसे साधारण सम्बन्ध के होनेसे गेलुसाककी रुचिमें कुछ और उत्तेजना उत्पन्न हुई । उसने और कई गैसों की छानबीन की । १८०८ में उसने बतलाया कि उद्हरिकाम्ल गैस का १०० घ. श. म. अमोनियाके १०० घ. श. म. से ही मिल सकता है । इसी प्रकार नोषजन के ओषिद्धोंमें भी सम्बन्ध निकाला गया । अमोनिया नोषजनके १ घ. श. म. उद्जनके तीन घ. श. म. मिलनेसे ही बन सकती है । इस प्रकार इन सब प्रयोगोंके आधार

पर गेलुसाक ने अपना नियम रक्खा, “गैसोंमें रासायनिक प्रक्रिया साधारण और पूर्ण अनुपातमें होती है, और जब कभी आयतन घटना है तो वह भी पूर्ण अनुपातमें ही घटना है,” जैसे उद्हरिकाम्ल गैसके १०० घ. श. म. अमोनियाके १०० घ. श. म. से मिल कर अमोनियम हरिदके १०० घ. श. म. पैदा करते हैं।

जिस समय गेलुसाक ने यह नियम रक्खा था, परमाणु भारका केवल नाम ही नाम सुना जाता था। जब एक बार रासायनिक प्रक्रियामें काम आने वाले आयतनों का अनुपात विदित हो गया तो उनकी सहायतासे “संयोग भार” की समस्या भी सरल हो गई। गेलुसाकके नियमसे यह फल निकलता है कि गैसोंके बराबर आयतनका भार संयोग भारसे सरल अनुपात रखता है, क्योंकि गैसोंमें दो परमाणुओं के बीचमें काफी जगह होती है। इसलिये यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक गैसके परमाणु बराबर जगह घेते हैं। इस प्रकार दो गैसोंके बराबर आयतनके भार उनके परमाणु भारसे पूर्ण समानुपात देखते हैं। इस प्रकार गेलुसाक ने अपने ही आप परमाणु भार निकाल डाले। यद्यपि यह अनुसन्धान डाल्टनके सिद्धान्तके लिये उपयोगी है परन्तु डाल्टन ने इसको नहीं माना क्योंकि वह समझता था कि प्रत्येक गैसके परमाणु भिन्न भिन्न होते हैं।

इन सब अनुसन्धानोंसे गेलुसाककी भौतिक गणितीय रुचिका पता चलता है। पाठक जान गये होंगे कि उस समयमें ऐसे अनुसन्धान करना कैसा कठिन कार्य था। गेलुसाकका नाम इन नियमोंसे संसार भरमें जीवित है। गेलुसाक ने बहुत कुछ कार्य अपने मित्र थेनार्ड के साथ किया जिसका वर्णन आगे दिया जायगा। स्वभाव से गेलुसाक कुछ कम बोलने वाला व्यक्ति था परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वह रुखा था। कदापि नहीं, वह प्रत्येक मनुष्यके लिये जो कुछ भी सहायता कर

सकता करता था। अपनी चतुरता और बुद्धिके कारण गेलुसाक बड़े बड़े पदों पर सुशोभित रहा। सन १८०६ में फ्रांसकी एकेडमीका सदस्य चुना गया और कुछ दिनों पालीटेकनीक स्कूल में आचार्य रहकर १८२८ ई० में सारबोनमें प्रोफेसर नियुक्त हुआ इसके पश्चात् १८३२ में रसायनका प्रोफेसर होकर “जाडिन डे प्लांट्स” (Jardine des Plantes) को भेजा गया। सन १८३६ में फ्रांस सरकार ने उसके लार्डकी पदवी दी। सन १८५० में सर्वदाके लिये इस संसारको छोड़ कर परलोक सिधारा।

लुई जैक्स थेनार्ड

(१७७७—१८५७)

थेनार्डका जन्म १७७७ ई० में फ्रांसमें हुआ। उनके माता पिता निर्धन थे, परन्तु उनके पास इतना धन अवश्य था जिसमें कि वह अपने पुत्र को पढ़ा सकें। छोटी ही अवस्थामें थेनार्ड पेरिस में चिकित्सा पढ़ने गया। वहाँ पर उसने अपने गुरु वेकैलिन से सहकारी नियुक्त करनेकी प्रार्थना की, वेकैलिन ने थेनार्डको अपने पास रख लिया। यहाँ पर थेनार्ड ने अपनी चतुरताका पूरा पूरा प्रमाण दिया। यहाँ तक कि अपने गुरुकी अनुपस्थितिमें उसको लेकर देनेको आज्ञा मिल गई। सन् १७९८ में पालीटेकनीक स्कूलमें प्रोफेसर नियुक्त हुआ और १८०४ में कालेज डे फ्रांस में प्राफेसर नियुक्त हुआ।

थेनार्डके अधिकतर अनुसन्धान गेलुसाकके साथ हुए हैं। सन् १८११ में दोनों ने मिलकर एक पुस्तक (*Researches Physico-chimiques*) लिखी जिसमें उन्होंने कार्बनिक यौगिकोंके विशेषण की रीतियाँ बतलाई हैं। कार्बनिक यौगिक पांशुज-हरतके साथ गलाया जाता है। (पहले उस वस्तु को अच्छी तरह सुखाया जाता है ताकि उसमें जल न रह जाये।) उसमें इतना हरेत डाला जाता है कि

सब वस्तु भली प्रकार जल जाये। इसी प्रकार और कई रीतियां बनलाई हैं। इन दोनों ने दुग्धशर्करा-अरेबिक गोंद इत्यादिका संगठन बनलाया।

इस कार्यके पश्चात् थेनार्ड ने काण्टिकाभल इमलिकाभल विगौदिकाभल और सिरकाभल के संगठन निकाले। साथ ही साथ बहुत से तैलों और त्रिपकदार वस्तुओं को विश्लेषित किया। इस प्रकार पाठक देखेंगे कि कार्बनिक रसायनका बहुत कुछ भाग थेनार्डके ही परिश्रमसे हुआ।

थेनार्ड ने गेलुसाकके साथ तारों पर भी कार्य किया। जिस समय डेवा ने विद्युत् विश्लेषण से पांशुजम् और सैन्धुकम् को प्राप्त किया उसी समय इन दोनों ने पांशुज-तारसे पांशुजम् लाहेसे श्रवकरण करके बनाया।

गेलुसाक और थेनार्ड में हरिनकी तत्त्वताको सिद्ध करनेमें भी बहुत कुछ कार्य किया। पहिले तो इन्होंने लैवासियेके सिद्धान्त के अनुसार डेवा के कथनका नहीं माना कि प्रत्येक अम्लमें श्रापजन नहीं होता, परन्तु जब इन लोगों ने उद्हरिकाभल में समानता स्थापित की और क्योंकि उद्हरिकाभल में भी श्रापजन नहीं होता, इसलिये उद्हरिकाभल में भी श्रापजन नहीं होना चाहिये। इसी प्रकार थेनार्ड ने और बहुत सी संवायें रसायन जगत्के लिये कीं। उसका सबसे बड़ा कार्य कार्बनिक रसायनमे ही था और कुछ कार्य गैसोंमें भी किया।

प्रारम्भमें थेनार्ड पालीटेकनिक स्कूल में ही प्रोफेसर रहा। सन् १८१० में फारकाका जगह प्रोफेसर नियुक्त हुआ और इसी साल फ्रांस अकेडमी का सदस्य चुना गया। सन् १८३२ ई० में फ्रांस सरकार ने थेनार्डका लाई बनाकर सम्मानित किया। थेनार्डका सरकारमें भी बहुत पदों पर कार्य करना पड़ा था। वह एक उदारचित्त और सर्वप्रिय व्यक्ति था और अपने सहकारियोंके लिये तन मन धनसे सहायता करने पर उद्यत रहता था।

सन् १८५७ ई० में जब भारतवर्षमें क्रांति फैली हुई थी थेनार्डकी मृत्यु हुई।

क्लाड लुई बरथोले

(१७४८—१८२२)

बरथोलेका जन्म १७४८ में टैलोर (फ्रांस) में हुआ। सन् १७७८ में वह पेरिसमें डाक्टरी करने लगा। सन् १७८० में फ्रांसकी अकेडेमी ने उसे अपना सदस्य चुना। बरथोले नेपोलियनको जानता था और उसके साथ पेरिस इत्यादि भी घूमा था।

बरथोले का मुख्य कार्य रासायनिक स्नेह (Chemical-affinity) पर हुआ है उससे पहिले ज्यॉफ्रीने इस विषय पर विचार प्रगट किये थे परन्तु कुछ सफलता प्राप्त नहीं हुई यद्यपि लैवासिये और बर्गमैन इत्यादि इसके मानने वाले थे, परन्तु बरथोले ने इसका विरोध किया। उसने कहा, यदि यह बात ठीक है तो रासायनिक स्नेह एक निरपेक्ष चीज होनी चाहिये और इस प्रकार एक अम्ल दूसरे अम्लके लवणसे इस अम्लको पूर्ण रूपसे हटा सकता है; परन्तु ऐसा बहुत कम होता है। इसके अतिरिक्त प्रक्रिया-गत वस्तुओंकी संख्या भी इन प्रक्रियाओं में एक महत्व पूर्ण स्थान रखती है, और एक वस्तु बहुत ज्यादा मिला देनेसे प्रक्रिया बिल्कुल बदल दी जा सकती है। लाहे पर भापका प्रभाव और लोह-श्रापद पर उद्जनका प्रभाव एक दूसरेके विरुद्ध क्रियायें हैं अर्थात् रासायनिक स्नेहके पहिले विचारों के अनुसार केवल एक ही क्रिया होना चाहिये परन्तु भिन्न भिन्न दशांमें दोनों होती हैं। केवल यह ही नहीं, ऐसे बहुतसे उदाहरण उसने दिये। उसने बतलाया कि यदि अम्ल और क्षारका घोल मिलाया जावे तो दोनों सामान्यावस्थामें रहते हैं। पाठक देखेंगे कि यहीसे विपर्यय प्रक्रियाओं (Reversible Reactions) की नींव पड़ती है, परन्तु खेद की बात है कि बरथोले परिमाण-क्रिया-सिद्धान्त (Law of mass-action) न बना सका। उसने यह अवश्य बतलाया कि रासायनिक प्रक्रिया

प्रक्रिया-गत वस्तुओं की संख्या पर निर्भर है। यदि गन्धकाम्ल कर्बनेतसे कर्बनिकाम्ल निकालता है। तो इसका यह कारण नहीं कि गन्धकाम्ल त्वाँरके साथ अधिक स्नेह रखता है बल्कि कर्बनिकाम्ल निकलते ही कर्बनट्रिऑक्साइडके रूपमें निकल जाता है। यदि इन विचारोंके और पक्का कर लेता तो सम्भव है कि वही परिमाण-क्रिया सिद्धान्तका बनाने वाला होता, परन्तु वह तो और हो और झुका हुआ था। उसने कहा कि तत्व किसी भी अनुपातमें मिल सकते हैं, बस एक ही बात ध्यान रखनी है कि कौन सा तत्व अधिक संख्यामें है। इन विचारोंके कारण उसने प्राउस्टके स्थिर संगठन नियमका घोर विरोध किया। अन्तमें प्राउस्टकी ही विजय हुई।

बरथोले सरकारके कार्योंमें लैवासियेकी भांति बहुत कुछ भाग लेता था। उसने कलाके लिये एक बड़ी ही अच्छी बात निकाली। वह यह कि हरिन् के प्रभावसे रङ्ग बिल्कुल जाता रहता है। बरथोले को सरकारकी ओरसे बहुत सी उपाधियाँ मिलीं। अन्त समयमें रह फ्रांसका लार्ड हुआ। सन १८२२ में आरशुलमें उसका देहान्त हुआ।

लुई प्राउस्ट

(१७५५—१८२६)

अब एक उस महापुरुषका वृत्तान्त दिया जाता है, जिसने बरथोलेके इस सिद्धान्तके कि प्रक्रिया-गत वस्तुओंकी संख्याके अनुसार बने हुये यौगिकों का संगठन भी बदलता जाता है गलत सिद्ध किया। प्राउस्टका जन्म १७५५ में हुआ। यद्यपि वह भी फ्रांसीसी था परन्तु स्पेन राज्यमें मेड्रिड विश्व विद्यालयमें प्रोफ़ेसर था।

मुख्यपत्रोंमें इन दोनों व्यक्तियोंका वाद विवाद 'आठ वर्ष' तक रहा और बड़े घोर प्रहार किये जाने थे परन्तु अन्तमें प्राउस्टकी जीत हुई क्योंकि जहाँ भी बरथोले ने दिखाया कि यह नया यौगिक बन

गया प्राउस्ट ने उसी समय दिखा दिया कि यह नई वस्तु यौगिक नहीं है बल्कि दो स्थिर संगठन वाले यौगिकों का मिश्रण है। इस कारण "स्थिर संगठन नियम" का जन्मदाता प्राउस्ट ही है।

नियम यह है "यदि कोई रासायनिक यौगिक किसी भी रीतिसे बनाया जाये तो उसका संगठन प्रत्येक दशामें वही रहेगा अर्थात् रासायनिक यौगिक का संगठन एक ही होता है। यह ध्यान रहे कि यौगिक शुद्ध दशामें होना चाहिये"। प्राउस्टके सम्बन्धमें और कुछ न कह कर कुछ ऐसी बातों का वर्णन किया जायेगा, जो उस समय परमाणुवाद की सहायता और उसके सम्बन्धमें निकलीं।

विलियम प्राउट

(१७८५—१८५०)

यह एक अंगरेज़ जाव-रसायनज्ञ था। १८१८ में उसने एक नई बात छुपवाई। जिसमें यह दिखलाया गया कि इस समय तक जो तत्व विदित हैं, उनका परमाणु भार पूर्ण संख्या है। केवल यह ही नहीं, उसने बताया कि उद्भजन सब तत्वोंका मुख्य तत्व है और सब तत्व इसासे मिल कर बने हैं परन्तु ज्योंही हरिन्का परमाणु भार ३५.५ निकाला गया, वैज्ञानिकोंका इस सिद्धान्त पर सन्देह होने लगा। यद्यपि उस समय यह बिल्कुल जड़में उड़ा दिया गया परन्तु २० वीं शताब्दीमें आकर इस सिद्धान्त के भाग खुल गये। पाठक शायद जानते हों कि जगत् विख्यात वैज्ञानिक एफ. डब्लु-प्रेस्टन ने इस सिद्धान्तका फिरसे समर्थन किया है और प्रयोगिक उदाहरणोंसे दिखा दिया है कि यह बात बिल्कुल ठीक है कि प्रत्येक तत्वका परमाणु भार पूर्ण संख्या होता है। इस अनुसन्धानका वर्णन आगे पूर्णरूपमें दिया जायगा।

इसी समयमें डूलांग और पेटिट ने एक और नियम बनाया जो परमाणुवाद सिद्धान्त ही के सम्बन्धमें है इसका वर्णन आगे दिया जायगा।

विद्युत् रसायनका विस्तार और सर हम्फ्री डेवीके अनुसन्धान

विद्युत् रसायनको छोड़ कर और कोई अनुसन्धान रासायनमें ऐसा नहीं है जिससे कि कलाकौशलको इतना लाभ हुआ हो। आजकल अधिकतर रासायनिक वस्तुएँ इसी के आधार पर बनाई जाती हैं और धातुमें तो लगभग ५० फी सदा इसी रीतिसे बनती है। किस प्रकार इस रसायनका जन्म हुआ और किन किन व्यक्तियों ने इसमें मुख्य काम किया, इन सब बातोंका वर्णन देनेका यहाँ पर उद्योग किया जायगा।

यह देखा गया है कि जब कोई अच्छा यन्त्र तैयार हो जाता है तो सब वैज्ञानिक उसकी सहायतासे नये नये प्रकारके प्रयोग करने आरम्भ कर देते हैं। इसी प्रकार जब १८०० ई० में वोल्ता ने प्रबल विद्युत् धारा देने वाली वोल्ता बाटरी तैयार की तो सब वैज्ञानिक इसकी सहायतासे लवणके घोलों पर विद्युत् धाराका प्रभाव देखनेका प्रयोग करने लगे। इस कार्यमें सबसे अधिक सफलता निकोलसन और कारलायलको हुई। उन्होंने विद्युत् द्वारा जल और कई घोलोंका विद्युत् विश्लेषण किया। सबसे अधिक आश्चर्यकी बात यह थी कि जलके विभाजनमें ओषजन और उद्जन भिन्न भिन्न बिजलीदों पर निकलती थी। क्या जल धनात्मक बिजलीद पर विभाजित होता है और उद्जन किसी रीतिसे ऋणात्मक बिजलीद पर चला जाता है? इसी प्रकारकी बहुतसी उलझने इन प्रयोगोंमें पड़ीं। इन सब बातोंका समझानेके लिये निम्नलिखित रीतिसे प्रयोग किये गये।

बाटरीके ऋणात्मक बिजलीदके चारों ओर पांशुज-गन्धेतका घोल रक्खा गया और धनात्मक बिजलीदके पास केवल जल। इन दोनोंको मिलाते हुए एक झात घोलसे भरा हुआ बर्तन रक्खा गया।

विद्युत् के चलाने हो धनात्मक बिजलीद पर गन्ध-काष्ठ उत्पन्न हो गया। इस प्रकारके प्रयोगोंसे बहुतसे नये नये विचार प्रगट किये गये परन्तु कोई ठीक नहीं हुआ। किस प्रकार इन विषयोंका विस्तार आज तक हुआ है इसका वर्णन कहीं आगे किया जायगा। अब और कुछ यहाँ पर भूमिकाके रूपमें न कहकर सर हम्फ्री डेवीके अनुसन्धानोंका वर्णन किया जायगा जिसके कार्यों ने रासायनिक जगत् को केवल जगा ही नहीं दिया बरन् उसमें एक प्रकारकी जान डाल दी।

सर हम्फ्री डेवी

(१७७८—१८२६)

अधिकतर संसार में बड़े बड़े पुरुष सर्वदा अपना श्रेष्ठ कार्य बाध्यावस्थामें ही करके शीघ्र मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं। ठीक ऐसा ही डेवीके विषयमें कहा जा सकता है। वह केवल २२ वर्ष की आयुमें ही रायल इन्स्टीट्यूशनका मुख्य आचार्य नियुक्त कर दिया गया था।

डेवीका जन्म १७ दिसम्बर १७७८ को एक प्रसिद्ध बर्दईके घर पेनजेन्स में हुआ। यद्यपि अपने बचपनमें उसने पढ़ने लिखनेमें अधिक मन नहीं लगाया, परन्तु बादमें उसे पढ़ने लिखनेके सिवा कोई काम ही नहीं था। पिताके मर जाने पर डेवी एक डाक्टरके पास नौकर हो गया परन्तु इनको नये प्रयोग करनेकी ऐसी चाह थी कि कुछ प्रयोगोंमें भगड़ा होजानेके कारण उस डाक्टर ने डेवीको अपने यहाँसे हटा दिया। दैवयोगसे डेवीका परिचय डाक्टर वेडोजसे हुआ जो उस समय एक विख्यात व्यक्ति था। वेडोज ने एक न्यूमेडिक इन्स्टीट्यूट खोल रक्खा था। जहाँ पर मनुष्यों पर मौसलों (Physiological) प्रभाव देखा करता था। यहाँ पर डेवी ने आकर मौसलोंका प्रभाव अपने ऊपर देखना आरम्भ कर दिया इससे उसे हानि भी हुई परन्तु इसीके कारण

एक उष्णकोटिका अनुसन्धान यहाँ हुआ अर्थात् नोबल शोधिका प्रभाव ज्ञात किया। इसके सूँघने से मनुष्यको हँसी आने लगती है। इसी कारण इसे “हास्यकर गैस” कहते हैं।

इस कार्यसे डेवी इतना प्रसिद्ध होगया कि रायल इन्स्टीट्यूशन खुलने पर जबकि वह केवल बाईस वर्ष का था, प्रोफेसर नियुक्त किया गया।

यह विद्यालय काउण्ट रमफोर्ड ने बड़े बड़े धनाड्यों की सहायतासे स्थापित किया था। उस समयसे अब तक बड़े बड़े उष्णकोटिक वैज्ञानिकों को ही इसके प्रोफेसर होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है जैसे डेवी, फ़ैरेडे, सरजेम्स डेवार इत्यादि। आजकल इस पद पर जगत् विख्यात् नोबेलपुरस्कारके विजेता सर विलियम ब्रैग सुशोभित हैं। जगह थोड़ी होनेके कारण डेवीके मुख्य मुख्य अनुसन्धानोंका हो वर्णन किया जायेगा क्योंकि उनका पूरे रूपमें देना बड़ा ही कठिन कार्य है।

डेवीके अनुसन्धान

सर्वप्रथम कार्य जिसके लिये डेवीका नाम सर्वदाके लिये जीवित है रसायन जगतको तत्वोंका ज्ञान देना है। डेवी ही ने सबसे पहिले इस विषय पर वैज्ञानिक रीतिसे प्रकाश डाला, यद्यपि लैवासिये ने भी इस विषय पर कुछ विचार प्रगट किये थे परन्तु उनमें अधिक सत्यता नहीं थी। उदाहरणतः चूना और स्फुरआषिदका भौलैवासिये तत्त्व छुगल करता था। डेवी ने अपने और दूसरोंके कार्यसे इस विषयका बहुत कुछ उद्धार किया। हरिन्को डेवीके समय तक सब लोग योगिक बतलाते थे परन्तु कई वर्ष लगातार कार्य करके अन्तमें हरिन्को तत्त्व सिद्ध करना डेवीके अद्भुत प्रयोगिक होनेकी एक झलक है। डेवीको अपने समयके सबसे बड़े प्रयोगिकोंमें कहा जाता है और वास्तव में वह था भी।

विद्युत्के विषयमें डेवी ने विद्युत् विश्लेषण पर बहुत कुछ कार्य किया और बहुत सो वस्तुओं पर विद्युत् धाराका प्रभाव देखा, साथ ही साथ वह धातुओंके ऐसे जोड़े विद्न करनेमें लगा रहा जिनसे कि धारा उत्पन्न होवे। उसने एक सचेष्ट बाटरी बनाई (Active cell) जिसमें केवल एक ही धातु काममें लाई जाती थी परन्तु दो घात प्रयोग किये जाते थे।

डेवीके समयमें जलका विद्युत् विभाजन किया जा चुका था। परन्तु उसने बताया कि यदि बिलकुल शुद्ध जल लिया जाये जिसमें लवण त्सार इत्यादि न मिले हों तो जलमें विद्युत् धाराको चानकता अधिक कम हो जाता है। डेवी ने पहिले ही लवणके घोलका विद्युत् विश्लेषित करके उनसे त्सार और अम्ल प्राप्त कर लिये थे। अब उसने इसका प्रयोग त्सार और अम्लोंके घालों पर भी आरम्भ कर दिया परन्तु इसमें कोई सफतना प्राप्त नहीं हुई, केवल आषजन और उद्ज्ज हा निकल कर रह जाती थी।

फिर उसने गलाये हुए त्सारोंको जन रहित द्शामें विश्लेषित किया, उसने अपने फतांक एक लेक्चरमें इस भाँति कहा है, “पांशुत-त्सारका छोटा सा टुकड़ा जो कि पहिले दो चार मिनटके क लिये बाहर रक्खा रहा था, नाकि उसके स्नल पर चालन शक्ति आ जाये, एक रोधक घेरे पर रक्खा गया और इसको बड़ा बाटरीके ऋणात्मक बिजलादने जोड़ दिया गया। इस टुकड़ेका ऊपरकी सतह एक पररोप्यम् तारसे धनात्मक बिजलादसे जोड़ दा गई। इस प्रकार एक प्रबल किया आरम्भ हो गई। जिन जगहों पर यह टुकड़ा दातों बिजतादीसे जुडा था, वह गजने लगा। ऊपरकी सतह पर कोई गैल निकलने लगी। और ऋणात्मक बिजलादके चार्ज और चार्ज की तरह चमकते हुए छोटे छोटे कण उत्पन्न हांगये। उनमेंसे कुछ तो जलने भी लगे और उनकी सतह एक सफेद वस्तुसे पुन गयो।

डेवी ने इस कार्यमें अपनी प्रयोगिक चतुरता को एक भ्रूतक वैज्ञानिक संसारको दिखा दी थी। इसके उपरान्त ही उसने इसा रातसे सैन्धकम्-क्षार से विद्युत् द्वारा सैन्धकम् धातुको तात्त्विक दशामें प्राप्त किया। डेवी इन क्षारोंको ओषिद् सम्भूता था। इसी कारण वह अमोनियाको भी ओषिद् कहा करता था।

डेवी ने बरज़ेस्यूस की सम्मति के अनुसार पार्थिव-क्षारोंके कार्यको हाथमें लिया, उसने इनको पारद-आषिद्से मिना कर विद्युत् विश्लेषित करना चाहा और इस प्रकार करनेसे पारदम् के साथ मिश्रण प्राप्त हुये। इन मिश्रणोंने कुछ परिश्रमके पश्चात् डेवी ने भारम्, खटिकम्, खंशम् प्राप्त किये। पाठक देखेंगे कि किस प्रकार डेवी ने एक के पश्चात् दूसरे तत्त्वको प्राप्त किया, यह कार्य एक साधारण मनुष्य का नहीं हो सकता। डेवी ने टॉंककाम्भको विश्लेषित करनेका भी उद्योग किया परन्तु इसमें पूरी सफलता गेल्सलक और थेनार्डको ही हुई।

डेवीके समयमें पहिले लैवासियेका ओषजन-अम्ल सिद्धान्त प्रसिद्ध था क्योंकि उस समय गन्धकाम्ल स्फुरिकाम्ल इत्यादि ही विदित थे। इस सिद्धान्तको गलत सिद्ध करने वाला डेवी ही था। उस समय हरिन्को यौगिक खयाल किया जाता था। शीले ने इसको सबसे पहिले उद्हरिकाम्ल और मांगनीज़ द्विओषिद्से प्राप्त किया था और इसका नाम फ्लोजिस्टनरहित मेरिनाम्भ रक्खा। बरज़ेस्यूसके समय तक सब यह समझते थे कि हरिन्में ओषजन मिली हुई है। डेवी इस बातको मानता तो था कि हरिन् और मूरियाटिकाम्ल (उद्हरिकाम्ल) में ओषजन होता है परन्तु उसके मनमें कुछ शङ्का होने लगी क्योंकि जितनी बार उसने हरिन् से ओषजन प्राप्त करनेका उद्योग किया उतनी ही बार असफलता प्राप्त हुई।

डेवी ने बहुतसे प्रयोग किये परन्तु सब बेकार। उसने हरिन्के साथ स्फुरको ज़ोरसे गर्म किया। जिससे दो यौगिक बने, एक ठोस और दूसरा द्रव। उस द्रवकी बहुत कुछ मात्रा इकट्ठी की और उसको अमोनियाके साथ जलाया परन्तु ऐसा करनेसे जल इत्यादि या कोई ऐसी वस्तु नहीं बनी जिससे यह बात होता कि हरिन् में ओषजन था। इसलिये यदि हरिन्में ओषजन नहीं तो मेरिनकाम्ल में ही कहाँसे हो सकता था। इस कारण डेवी ने बतलाया कि हरिन् एक तत्त्व है और उद्हरिकाम्ल में ओषजन नहीं होता। इस बातको पहिले तो वैज्ञानिकों ने नहीं माना क्योंकि यह बात लैवासियेके विरुद्ध थी, विशेष कर गेल्सलक और थेनार्ड लैवा-सियेके सिद्धान्त पर अटल रहे पर बाद में ही इन दोनों ने इस सिद्धान्तके विरुद्ध एक बड़ा महत्त्व पूर्ण कार्य किया अर्थात् उद्हरिकाम्ल और उद्श्यामिकाम्लमें समानता दर्शाई। क्योंकि उद्श्यामिकाम्ल में ओषजन नहीं होता इसलिये डेवीका बात मान ली गई।

डेवी ने केवल यह ही नहीं किन्तु मनुष्योंके लिये भी अधिक सेवा की। उसने एक नये प्रकार का लैम्प बनाया जिसको “डेवी लैम्प” कहते हैं। यह खान खोदनेवालों के लिये अति लाभदायक है। इसको लेकर वह खानमें खोद सकते हैं और देख भी सकते हैं परन्तु आग नहीं लग सकती।

डेवी ने अपने विचार रासायनिक स्नेह की ओर भी प्रेरित किये थे। पहिले तो वह इसमें कुछ भ्रष्टा नहीं रखता था परन्तु बोस्टाके कुछ प्रयोग दोहराने पर “मेल सिद्धान्त” का मानने वाला हो गया। डेवी ने रासायनिक स्नेहका विद्युत् से सम्बन्ध बताया। उसका कहना था कि जब दो तत्त्व मिलते हैं जैसे ताम्रम् और गन्धक तो तबे और गन्धकके संचार आपसमें शिथिल होजाते हैं। बस डेवी वहीं तक रहा। पाठक देखेंगे कि इन्हीं विचारोंका बरज़ीलियस ने समर्थन किया और उनको विस्तार भी दिया।

पाठकोंकी आश्चर्य होगा कि इतना लिखने पर भी डेवो का सबसे बड़ा अनुसन्धान रहा जाता है। यह अनुसन्धान फेरेंडे जैसे हीरेको कीचड़मेंसे निकाल कर लानके रूपमें रासायनिक जगत्को देना था। यह उसकी विज्ञानके लिये सबसे बड़ी सेवा कही जा सकती है। इसका वृत्तान्त संक्षेप रूपमें आगे दिया जायगा।

डेवी अन्तिम समयसे एक वर्ष पहिले अपनी जगह छोड़ चुका था। उसका स्वास्थ्य लगातार परिश्रमके कारण बिगड़ चला था। इस कारण वह भिन्न भिन्न देशोंमें स्वास्थ्य वृद्धिके कारण जाया करता था। पर साथ साथ वैज्ञानिक कार्य नहीं छोड़ता था। डेवी लगभग उस समयकी प्रत्येक

वैज्ञानिक सभाका सख्त था और कुछ दिनों तक रायल सोसाइटीका प्रधान भी रहा। इस सोसाइटी ने डेवीकी स्मृतिमें “डेवी पदक” स्थापित किया है जो संसारमें बड़े बड़े वैज्ञानिकोंके भाग्य पड़ा है। १८१२ ई० में सरकार ने डेवीको थोड़ी ही अवस्था में “सर” की उपाधिसे सम्मानित किया और १८१८ में बैरन बनाया गया। डेवीके भाषण बड़े मधुर और गूढ़ होते थे। हृदयसे डेवी बड़ा दयालु और उत्साहित विद्यार्थियों का सहायक था, जिसका उदाहरण फेरेंडे है। अपने स्वास्थ्यके कारण डेवी ने ५१ वर्ष की ही अवस्थामें २६ मई सन् १८२६ को जनेवा में संसारसे बिदा मांगा। प्रयोगिक वैज्ञानिकोंमें उसे सम्राट कहा जा सकता है और वास्तवमें वह था भी।

परमाणु भारका निकालना बरजेल्स, स्ट्रास, रिचार्डश इत्यादि के अनुसन्धान

पहिले ही यह बतलाया जा चुका है कि ज्ञान डाल्टन ने किस प्रकार परमाणु सिद्धान्त को नींव डाली। इसके साथ ही साथ यह भी आवश्यक है कि इस सिद्धान्त को किस प्रकार वैज्ञानिकों ने रासायनिक प्रक्रियाओंको समझानेके लिये कितने नये नये रूपोंमें दर्शाया है। परमाणु भार डाल्टन के समय से वर्तमान काल तक रसायनज्ञों की रुचि को आकर्षित करता रहा है। यहाँ पर परमाणुभारका ठीक ठीक महत्व भी बता देना परम उपयोगी होगा। इसका यह अर्थ नहीं है कि हम किसी तत्वके परमाणुका भार निकाल सकते हैं और भारको ही परमाणु भार कहते हैं। नहीं नहीं, इससे कहीं भिन्न इसका अर्थ है। परमाणु भार केवल उद्जन और दूसरे तत्वके परमाणुके भारोंका अनुपात है। यह केवल यह बताता है कि किसी तत्वका परमाणु उद्जन परमाणु से कितना

गुणा भारी है। शोधजन का परमाणु भार १६ है, इसका यह अर्थ है कि शोधजनका परमाणु उद्जनके परमाणुसे १६ गुणा भारी है। खैर, यह तो परिभाषा रही। अब यह प्रश्न उठता है कि किस प्रकार इस संख्याको निकाला जाये, क्योंकि न तो किसी ने परमाणु देखा ही है या किसी भाँति कभी देखा जा सकता है। भला फिर उनके भारका अनुपात निकालना तो एक स्वप्नको सो बात होगी। इस समस्याको हल करने वाला बरजेल्स था जो कि अपने समयका सबसे बड़ा रसायनज्ञ था। उसकी प्रयोगशालामें बोलर, मिटशरलिच इत्यादि जैसे उच्चकोटिके वैज्ञानिकोंने शिक्षा पाई। उसका कहना उस समय एक नियम माना जाता था। बरजेल्स के पश्चात् डूमा इत्यादि ने अपनी अपनी सुविधाके अनुसार परमाणु-भार निकाले। इन सबोंके पश्चात् मुख्य कार्य स्ट्रासका आता है जिसने अधिक परिश्रमके साथ परमाणु-भार निकाल कर पहिली कुछ सख्याओंको ठीक किया। वर्तमान कालमें रिचार्ड्स ने इस विषय पर अद्भुत परिश्रम और चतुरताके साथ कार्य किया। आजकल उसकी दो हुई संख्याएँ ठीक मानी जाती हैं। रिचार्ड्सके

शिष्यों ने इस कार्यको उसका मृत्युके पश्चात् भी उतने ही परिश्रमसे जारी रखना है जैसे प्रो० हागनरिमड, बेक्सटर इत्यादि ।

क्योंकि इस सम्बन्धमें बरज़ेल्स्यूस, स्टास और औरिचार्ड्स का ही कार्य अधिक प्रसिद्ध है इसलिये यहाँ पर इन तीनों व्यक्तियोंका ही वृत्तान्त संक्षिप्त रूपमें देनेको चेष्टाकी जायगी ।

जॉ जेकोब बरज़ेल्स्यूस

(१७७६—१८४८)

बरज़ेल्स्यूस का जन्म २० अगस्त सन् १७७६ को स्वीडनके वेफ़रसगंडा नामक स्थान पर हुआ । उसका पिता एक छोटेसे स्कूलमें अध्यापक था जो बरज़ेल्स्यूसको चार वर्षका ही छोड़ कर मर गया । साथ साथ कुछ दिनों उपरान्त उसकी माता भी संसारसे चल बसी । इस प्रकार बेचारे बरज़ेल्स्यूस को अपने बचपनमें दूसरे सम्बन्धियोंकी शरण लेनी पड़ी ।

बरज़ेल्स्यूसकी प्रारम्भिक कथा बड़ी ही विचित्र है । जब वह एक विद्यार्थी के रूप में पाठशाला में पढ़ता था तो उसके अध्यापक उससे प्रसन्न नहीं रहते थे क्योंकि वह अपना काम भले प्रकार नहीं करता था, विशेष कर रसायनमें तो वह बहुत ही कम जानता था । जब १८०२ में सब कामोंसे निवृत्त हो गया तब स्टाकहोल्म जा करके अस्पताल में काम आरम्भ कर दिया । इसके अनुसन्धानों का ऐसा प्रभाव पड़ा कि वहाँके बड़े बड़े आचार्यों से इसकी मित्रता हो गई ।

उसका सबसे प्रसिद्ध कार्य परमाणु-भार पर हुआ । सन् १८१० के पश्चात् उसने कई लेख इस विषय पर लिखे । यद्यपि वह डाल्टनके परमाणु सिद्धान्त को मानता अवश्य था परन्तु उसकी वर्तमान दशासे संतुष्ट न था और जानता था कि केवल इसीके आधार पर कोई रासायनिक किया ठीक ठीक नहीं समझाई जा सकती है कि जब तक

कोई ठीक २ सम्बन्ध उनमें स्थापित न किया जाये । इस कारण उसने तत्त्वोंका तुल्यांक भार निकालना आरम्भ कर दिया । इस कार्यमें जितना परिश्रम उसने किया वह वर्णन करना कठिन बात है । जैसा कि कुछ लोगोंका कथन है, इस कार्यके लिये उसने कमसे कम दो सहस्र योगिकोंका विश्लेषण किया । साथ साथ पाठक यह भी ध्यानमें रखें कि उस समयकी प्रयोगशाला एक भोजनशालासे अधिक अच्छी न थी । परन्तु तब भी उसने बड़ी ही चतुरतासे कार्य किया । नीचे कुछ उसके निकाले हुये परमाणु भार और अखिल जातीय समाके माने हुये भार दिये जाते हैं ।

बरजेल्स्यूस	अखिल जातीय सभा
सीसम् २०७.१२	२०७.२०
हरिन् ३५.४१	३५.४६
पांशुजम् ३६.१६	३६.१०
गन्धक ३२.१८	३२.०६

पाठक देखेंगे कि उसकी दी हुई और अबकी संख्यामें अधिक भेद नहीं है । साथ ही साथ उस समय और वर्तमान कालकी सुविधाको देखिये । इससे अधिक प्रमाण उसकी चतुरताका न दिया जा सकता है और न आवश्यक है ।

जिस समय बरज़ेल्स्यूस ने रसायन क्षेत्र में अपना पैर रक्खा तो सब कांटोंसे भरा हुआ था । जिधर दृष्टि पड़ती उधर ही अशुभकार था । उस समय बड़े वैज्ञानिकोंके दिमाग टकर खा रहे थे और थककर रह जाते थे, उदाहरणतः किस प्रकार रसायनिक वस्तुओं को सूखों में लिखा जाय, कैसे परमाणु भार निकाले जायें, विद्युत् धाराका क्या आधार है और सबसे बड़ा जो अभी तक जादूगर का हास्य है, अर्थात् रासायनिक स्नेह । इन सब विषयों पर ध्यानपूर्वक उसने कार्य किया और वह प्रत्येकके विषय कुछ न कुछ ठीक सम्मति रखता था ।

परमाणु भारोंके निकालनेमें उसने बड़ी चतुरता से कार्य किया। कभी कभी एक उदाहरण इस विषयमें दिया जाता है जैसे सोसमूका परमाणु भार। उसने सोस-गन्धकके ओषिदीकृत किया और फिर देखा कि बचे हुये द्रवमें कोई सोसमू या गन्धकाम्ल नहीं है अर्थात् सोसे और गन्धकाम्ल का वही अनुपात सोस गन्धकमें है जो गन्धकमें परन्तु सोस ओषिदमें ओषिदके चार भागोंमेंसे एक भाग पहिले ही मिला है इसलिये तीन भाग गन्धकसे मिले हैं। इस प्रकार उसने गन्धक और सोसमूके परमाणु भार निकाले। इसके पश्चात् ही दो बड़े अच्छे नियम निकले जिनकी सहायतासे बरज़ेल्यूस ने अपना दी हुई संख्याओंको फिरसे दोहराया और उसमेंसे कुछको ठीक भी किया। वह नियम यह थे डूलांग और पेटिट का परमाणु-नाप नियम और मिश्रशरलिकका समरूपक नियम।

बरज़ेल्यूस का दूसरा बड़ा कार्य हरिन् पर हुआ। पाठकों का याद होगा कि पिछले भागमें हरिन्की तत्त्वताके विषयमें पहिले ही बताया जा चुका है कि डेवी के समय से पहिले हरिन् उद्हरिकाम्ल की ओषिद मानी जाती थी। यद्यपि इस पर उसने कोई प्रयोगिक कार्य नहीं किया परन्तु तब भी इस पर कई लेख लिखे। शुरूमें वह इसमें कुछ विश्वास नहीं रखता था परन्तु बादमें जब डेवी ने भलो प्रकार यह दिखला दिया कि हरिन् तत्व है, इसमें ओषजन इत्यादि कुछ नहीं तब वह इसको मानने लगा था। उसने अरुणिन् भी निकाला था परन्तु इसका यश उसको नहीं मिला। उसने एक काँचकी नली भर कर अपने पास रखी थी और अपने शिष्योंको दिखाया करता था, देखो, यह मेरी मूर्खता है। यदि मैंने कुछ ध्यान दिया होता तो अरुणिन्को अन्वेषण करने वाला कहलाता।

बरज़ेल्यूसको योगिकोंके बनानेकी किया समझाने की बड़ी धुन लगी हुई थी। उसने युगल सिद्धान्त

(Dualistic System) निकाला इसमें भी लैवालिये के विचारोंकी भूजक प्रतीति होती है। उसका कथन था कि यौगिक युगल स्नेहसे बनते हैं। अर्थात् लवण अम्ल और क्षारके मेजसे बनते हैं। इसी प्रकार कई प्रकारके उदाहरणोंसे उसने इसका समर्थन किया।

बरज़ेल्यूस ने रासायनिक प्रक्रियाओंको समझाने के लिये विद्युत् विचारोंसे भी दृष्टि डाली और बहुत से लवणोंके घोलोंको विद्युत् विश्लेषित किया, अर्थात् लवणोंसे क्षार और अम्ल उत्पन्न किये। इस घटनाका बरज़ेल्यूस पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने तुरन्त ही इसको और ओषजनको लेकर रसायनको एक नया रूप देना चाहा जो डेवीके विचारोंसे कहीं बढ़कर था। डेवी ने तो केवल यह ही कहा था कि जब दो तत्त्व परस्पर मिलते हैं तो उनके परमाणु भिन्न भिन्न संचार ग्रहण कर लेते हैं परन्तु उसका कथन इससे बढ़कर था। उसने बतलाया कि प्रत्येक परमाणु दो प्रकारके होते हैं अर्थात् परमाणुमें चुम्बक की तरह दो ध्रुव होते हैं। एकमें ऋणात्मक विद्युत् और दूसरेमें धनात्मक। पाठक को याद रखना चाहिये कि वास्तवमें यहाँसे परमाणु संगठनकी नींव पड़ती है, अब तो यह एक मानी हुई बात है कि प्रत्येक परमाणुमें दो प्रकारके संचार होते हैं। तत्त्वोंका ऋणात्मक या धनात्मक होना उनके संचार पर निर्भर था अर्थात् जो भी अधिक हो। इस प्रकार हरिन् में अधिक संचार ऋणात्मक तरहका माना गया क्योंकि वह ऋणात्मक है।

इस विद्युत् विचारको लेकर उसने अपने युगल-सिद्धान्तको और भी दृढ़ आधार पर रखना जैसे ओषजन ऋणात्मक था और गन्धक धनात्मक। इसी प्रकार यह दोनों मिल करके गन्धकाम्ल बनाते हैं।

इसी विचारसे विद्युत् विश्लेषणको भी भले प्रकार समझाया क्योंकि प्रत्येक विद्युत् चालकमें ऋणात्मक और धनात्मक संचार होते हैं। विद्युत्

धारा केवल उन दोनोंको पृथक् पृथक् कर देती है। तभी वह दोनों ध्रुवों पर निकलते हैं। यों तो बरज़ेल्सके कामों पर ही एक बड़ा पुस्तक लिखी जा सकती है, यह केवल एक उसको भूमिका है।

इसके साथ ही साथ बरज़ेल्स ने साहित्यमें भी कम काम नहीं किया। उसने एक पुस्तक लिखी जो ६ भागोंमें छपी और अपने समय में यह अद्वितीय थी। वह प्रत्येक वर्ष स्टाकहोल्म अकेडेमी को रसायन की उन्नति की एक वार्षिक रिपोर्ट भी दिया करता था, यह ही नहीं कि बरज़ेल्स एक अनुसन्धानक ही था। वह एक बड़ा आचार्य भी था। प्रत्येक वर्ष वह अपनी प्रयोगशाला में अच्छे अच्छे रसायन विद्यार्थियों को बुलाया करता था। वोल्गर, मिटशरलिक, रोज़, मैगनस इत्यादि इसी प्रयोगशालामें कार्य्य करके प्रसिद्ध हुये थे। यों तो बरज़ेल्स जब किसी अनुसन्धान पर धावा बोल देता था, बस उसको उड़ा ही देता था परन्तु यह नहीं कि किसी शत्रुतासे ऐसा करता था, नहीं उसके विचार ही इतने गूढ़ थे। उस समयमें वह रसायन का नेता था, उसका

कथन एक नियम समझा जाता था। बरज़ेल्सका सरकारमें भी अधिक मान था। इसी कारण सरकार ने उसे बैरनको उपाधि दी थी। वह अपने विद्यार्थियों को अधिक प्यारकी दृष्टिसे देखता था। वोल्गरके एक लेखसे इसका पता चलता है। जगह न होनेके कारण यहां उसका अनुवाद नहीं दिया जा सकता। उसके कुछ कड़े शब्दोंके कारण लोग उसके शत्रु हो जाते थे। प्रकृति ने उसको इतना हृष्ट पुष्ट बनाया था कि १५ या १६ रोज़ वह प्रयोगशालामें कार्य्य करने पर भी नहीं थक पाता था। उसके आकर्षण ने किस पर प्रभाव नहीं डाला। वास्तव में वह एक बड़ा गुरु था। अन्तमें उसका कुछ समय बड़े भगड़ोंमें बीता क्योंकि लोग उसके सिद्धान्तोंके विरुद्ध आवाज़ उठाने लगे परन्तु अब तक भी उसक से चतुर और ठाक कार्य्य करने वाले बहुत कम रसायनज्ञ हुये हैं। परमाणु भारका कार्य्य उसका एक प्रत्यक्ष प्रमाण है। अन्त समय तक उसने तन मन धनसे रसायनकी सेवा की। अन्तमें ७ अगस्त १८४८ को सर्वदा के लिये परलाक सिधारा।

जाँ बतिस्त स्ट्रास

(१८१३—१८६१)

रेसे वैज्ञानिक जिन्हें सर्व संसारकी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई हो अधिक नहीं होते। पहिले ही बरज़ेल्सूस्के विषयमें कहा जा चुका है। वह तो अपने समयका रसायनिक नेता था। यहां पर स्ट्रासकी जीवनीका कुछ वृत्तान्त दिया जायगा जिसने अपने कार्यके बलसे यह दिवा दिया कि ठीक ठीक परमाणु भार निकालना उतना ही आवश्यक है जितना कि नये नये यौगिकों और तत्वोंका विदित करना।

स्ट्रासका जन्म २१ अगस्त सन् १८१३ ई० को लोर्वें (बेलजियम) में हुआ। अभी भले प्रकार युवक भी न होने पाया था कि उसको अपने जीवन निर्वाहकी फ़िक्र पड़ गई। स्ट्रास ने प्रथम चिकित्सा का अध्ययन किया परन्तु इससे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। बल्कि अपने मित्र कोनिङ्गके साथ १८३५ में अपने हां घर पर फ़्लोरिडज़िन) पर कार्य आरम्भ कर दिया। स्ट्रास ने अपने लिये एक तराजू अपने ही हाथोंसे तैयार की जो थोड़े ही से व्ययमें बन गई। इस प्रकार स्ट्रास ने अपना कार्य अपने घर पर ही आरम्भ कर दिया। फ़्लोरिडज़िन स्ट्रास ने ग्रंगूरके वृत्तकी छाल से तैयारकी थी। इस कार्यका उसके हृदय पर इतना प्रभाव पड़ा कि बस फिर उसने अपनी सारी आयु रसायन शास्त्रकी खोजमें ही लगानेकी ठान ली। इसके पश्चात् स्ट्रास ने डूमाकी प्रयोगशालामें जानेके लिये प्रो० डूमासे प्रार्थनाकी। डूमा उसके कार्यसे पहिले ही इतना प्रसन्न हो चुका था कि उसने तुरन्त ही स्ट्रासको अपनी प्रयोगशालामें बुला लिया।

पेरिस आकर भी स्ट्रास ने फ़्लोरिडज़िन पर कार्य जारी रखा और कई रसायनिक रसोंके

प्रभाव विदित किये। अम्लोंके साथ उबालनेसे फ़्लोरेटिन और द्राक्ष शर्करा उत्पन्न होते हैं। फिर डूमा और स्ट्रास दोनों ने मिलकर सम्मेलनों, मध्यों और उल्लकों पर पांशुज और खटिक उद्घोषिद के मिश्रणका प्रभाव बनलाया। सिरकाम्ल व पिपीलिकाम्लके क्षार बना कर उनके संगठनको ठोक ठोक सिद्ध किया। साथ ही साथ सिरकानके मुख्य स्वभावको दर्शाया, उस समय सिरकान भी एक मध्य माना जाता था।

इस सबके पश्चात् डूमा और स्ट्रास ने कर्वनके परमाणु-भार पर कार्य आरम्भ किया। डूमा और बहुतसे रसायनज्ञों ने इस बातका अनुभव किया था कि यदि कार्बनिक यौगिकोंमें कर्वन और उद्जन की संख्या निकासी जाये तो सर्वदा उसका कुल योग आरम्भकी हुई वस्तुसे अधिक आता है अर्थात् कर्वन का परमाणु भार जो बरज़ेल्सूस् ने निकाला था कुछ अधिक है। बार बार प्रयोग करनेके पश्चात् डूमाको इस बातका पूरा विश्वास हो गया था कि कर्वनके परमाणु भारको फिरसे निकालना चाहिये। बरज़ेल्सूस्की संख्या १२.२४६ थी। इस कार्यका करना भी कोई साधारण बात नहीं थी। कर्वन द्विघोषिद का संगठन स्थापित करनेके लिये कई रूपोंमें कर्वन ली गई, जैसे लेखनिक हीरा, बनावटी इत्यादि। तुनी हुई संख्या चानाकी नलीमें जलाई गई और कर्वन द्विघोषिद पांशुज उद्घोषिदसे शोषकी गई। प्रत्येक बात को ध्यानमें रखते हुये कर्वन का परमाणु भार ७.४६५६ (ओ=१००) निकाला गया, इससे बहुतसे पहिले फल ठीक किये गये।

इस कार्यके पश्चात् १८४० ई० में स्ट्रास अपने देशमें ब्रसेल्स विश्वविद्यालय का रसायनान्तर्य नियुक्त हुआ। इस पद पर नास वर्ष रह कर बेलजियम सरकारकी टकसालका मुख्य अध्यक्ष नियुक्त हुआ। यहां पर भा वह अधिक न ठहरा और सन् १८७२ में अलग हो गया।

परमाणु भारके अनिरिक्त स्टास ने और भी कई महत्वपूर्ण कार्य दिये। सन् १८४२ में वायु-मण्डल पर एक लेख फ्रांस अकडेमी को भेजा जिसमें उसने वायुका पूरा पूरा हाल प्रकाशित किया है। हेम्पटिनक साथ १८४३ में गन्धकाम्ल पर सिरकाम्लका प्रभाव जनाया। १८४७ में सिरकाम्ल के संगठन पर एक लेख प्रकाशित किया, इस वस्तुके बनाने और शुद्ध करनेकी एक नई रीति बतलाई।

उसका कार्य खाद्य पदार्थों पर हुआ है। १८४५ में आलूके रोगों पर एक लेख लिखा और इस रोग को दूर करने के कई उपाय बतलाये। गस्टेव फोंगनीसकी ताम्बुलिनसे मृत्यु हो जानेसे स्टासको विषकी परीक्षा पर नियत किया गया। स्टास ने विष दिये जानेका पूरा प्रमाण दिया और वनस्पति क्षारों का विदित करने की नई नई रीतियां निकालीं और पुरानी रीतियोंकी तुच्छता दर्शाते हुये नई रीतियोंका महत्व पूर्णतया जनाया। १८७७ से १८७६ तक संगठन फ्लेयर डेविलके साथ पररोप्यम् परिवारकी धातुओंके स्वभाव पर बहुत कुछ कार्य किया। इसके साथ ही साथ पररोप्यम् और इन्द्रम् के धातुसंकरके वजन प्रयोग करनेका प्रस्ताव किया जो आजकल माने जाते हैं। इससे यह जान पड़ता है कि स्टास ने धातुसंकर पर भी बहुत कुछ कार्य किया जिससे बेल्जियम सरकारको युद्ध सम्बन्धी वस्तुओंके बनानेमें काफी सहायता मिली। इन प्रयोगोंके फल जनता को प्रकाशित नहीं किये गये हैं।

स्टास के परमाणु भार पर अनुसन्धान

परमाणु भारके कार्यसे स्टासका केवल यही अभिप्राय नहीं था कि बहुतसे तत्त्वोंके परमाणु भार ठीक ठीक निकाले जायें परन्तु साथ-साथ यह भी ध्यान था कि क्या इस कार्यसे प्रकृति की बनावट का कुछ पता लग सकता है क्योंकि परमाणु प्रकृतिके भवनकी एक ईंट है। उसने एक प्रश्नको हल करने

की चेष्टा की कि क्या परमाणु भार एक स्थिरांक है चाहे किसी रीतिसे निकाला जाये? यद्यपि इनकी सत्यता पर बड़े बड़े रसायनज्ञों मैरिगनक इत्यादिकों शंका थी, यहां तक कि ब्युटिलरों इत्यादि का कहना था कि परमाणु भार उस तत्त्व की भौतिक दशाओं पर बहुत कुछ निर्भर है, और दूसरे तत्त्वों से मिल जाने पर बदल जाता है। इसके पश्चात् पाठकों को पहिले ही जैसा कहा जा चुका है सर विलियम क्रुक्स ने उसी तत्त्वके परमाणुओंमें कमसे कम भारके विषयमें पृथक्ताकी सम्भावना दिखाई।

दूसरा प्रश्न था तत्त्वोंके परमाणु भार उद्जन के मानते हुये पूरी पूरी संख्या होते हैं या नहीं? इसी प्रकारके कई प्रश्न स्टासके सामने थे जिनका उसे उत्तर देना था। इन सब बातोंका ध्यानमें रखते हुए स्टास ने बड़ी चतुरता और धैर्यके साथ कार्य किया। इस प्रकारके कार्यमें कितनी सहनशीलता और धैर्यकी आवश्यकता है, पाठक भले प्रकार कठिनाता से समझेंगे।

स्टासका इस विषयमें सबसे अधिक महत्त्व पूर्ण कार्य रजनमके परमाणु भार पर हुआ। वह केवल किसी यौगिकके विश्लेषणसे ही परमाणु भार नहीं निकालता था बल्कि उसके संश्लेषणसे अपनी पहली संख्याओंकी जांच करता था। जैसा कि उसने रजत-हरिदका रजतम् और हरिन् से संश्लेषण करके दिखाया। जिन काँचके बर्तनोंमें कार्य किया जाता था इनमें से कुछ वोहोमियन काँचके बने हुये थे जो जलके प्रभावसे घुलकर द्वार धातुओंके हरिद बना देते थे। इस प्रकार रजत-हरिदके बनानेमें गलती होती थी। इनमें हरिदके बजाय अरुणिदका प्रयोग करके इसने ठीक किया। इसके बार बार बतानेकी आवश्यकता नहीं कि स्टास सर्वदा एक ही बातको कई रीतियोंसे करनेमें अत्यन्त विश्वास रखता था।

उसका विश्वास हो गया था कि तत्त्वोंके परमाणु भार पूर्ण संख्या नहीं होते, उनमें भिन्न भी

होती हैं। यद्यपि उसका विश्वास प्राउटके सिद्धांत में था परन्तु प्रयोगों के फलोंसे यह बात सिद्ध न हो सकी।

यहाँ पर स्ट्रासके कार्य पर और कुछ नहीं कहा जायेगा। स्ट्रास सर्वदा दयालु और सहनशील स्वभाव का व्यक्ति रहा। यद्यपि वह बड़े बड़े पदों पर रहा और प्रतिष्ठायें पाईं पर कभी उसको बातों का घमंड नहीं हुआ। उसका जीवन कार्य-कर्त्ताओंके लिये एक उदाहरण है। वह आजन्म

ब्रह्मचारी रहा और यह कहिये कि रसायनसे ही विवाह कर लिया था। स्ट्रास कई सोसाइटियों का सदस्य चुना गया। जैसे रायल सोसाइटी, फ्रेंच अकेडेमी इत्यादि। इसके अनिरिक्त उसका सरकार में भी बड़ा मन था। कई वर्ष तक बेलजियम अकेडेमीके सभापतिके आसनको सुशोभित किया। सन् १८८५ में रायल सोसाइटी ने डेवी पदकसे सम्मानित किया। १३ दिसम्बर सन् १८८१ में स्ट्रासकी मृत्यु हुई।

थ्योडर विलियम रिचार्ड्स

(१८६८—१९२६)

रिचार्ड्स का जन्म ३१ जनवरी १८६८ ई० के जर्मनी के पेनसिलविया नगर में हुआ।

उसका पिता एक विख्यात चित्रकार था और माता भी एक उच्चकोटि की विदुषी थी। रिचार्ड्स की शाल्य-ग्रन्थों अधिकतर अपनी माता ही के साथ बानी और उसीसे बहुत कुछ प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। उसके शुरू ही से रासायनिक प्रयोगों में बड़ी रुचि थी। इस कारण उसके पिता ने १४ वर्ष की ही आयु में रिचार्ड्स को हारवर्ड कालेज में शिक्षा पाने के लिये भेज दिया। सन् १८८५ में उसने विज्ञान की परीक्षा जिसके बी० एस-सी० कहते हैं पास का और कुल कक्षा में सर्वप्रथम रहा।

रिचार्ड्स की तीव्र बुद्धि का उसके प्रोफेसर कुक पर बड़ा प्रभाव पड़ा और उसने रिचार्ड्स को अपना सहारा नियुक्त कर लिया। कुक के मन में सर्वदा यौगिक अनुपात निकालने की लालसा लगी रहता था क्योंकि उसका विचार था कि यदि आषजन का परमाणु भार १६ मान लिया जाये तो अन्य तत्त्वों के परमाणु भार पूर्ण संख्या आते हैं। पाठकों को स्मरण होगा कि यह प्राउट का कथन था परन्तु यदि उद्जन का परमाणु भार १ माना जाये तो बहुत हा कम तत्त्वों के परमाणु भार पूर्ण संख्या आते हैं। इस कारण कुक आषजन और उद्जन का ठीक ठीक यौगिक अनुपात निकालना चाहता था। परन्तु आंशों में कुछ रोग हो जाने के कारण उसने रिचार्ड्स को इस कार्य पर लगा दिया। १८ वर्ष के नवयुवक के लिये यह एक सहूल कार्य नहीं था क्योंकि इसमें आषजन और उद्जन गैस से भरे हुए ग्लोब ठीक ठीक तालने पड़ते थे। यह दोनों गैसें मिला कर गर्म ताम्र ओषिद पर प्रवाहित की जाती थीं। इस प्रकार जो जल बनता, उसको तोलकर दोनों गैसों का अनुपात निकाला गया। इस प्रयोग

के आधार पर रिचार्ड्स ने आषजन का परमाणु भार 14.028 ± 0.0017 निकाला। यह पूर्ण संख्या के निकट हो है।

इस कार्य की प्रतिष्ठा में विश्वविद्यालय ने रिचार्ड्स को पारकर छात्रवृत्ति देकर योरोप के भ्रमण के लिये भेजा। यहां पर लार्ड रैले और सर हेनरी रास्के जैसे महापुरुषों से उसका परिचय हुआ। हारवर्ड लौटने पर रिचार्ड्स रसायन-अध्यापक नियुक्त हुआ। कुक की मृत्यु के पश्चात् रिचार्ड्स जर्मनी में भौतिक रसायन पढ़ने के लिये ओस्टवाल्ड और नर्न्स्ट के पास भेजा गया ताकि अमेरिकामें भी भौतिक रसायन की उचित शिक्षा दी जा सके।

योरोप में लौटने के पश्चात् उसने परमाणु भार पर फिर कार्य आरम्भ कर दिया। इसका यह कारण नहीं था कि रिचार्ड्स इस कार्य का इतना चाहता था और इसमें इतना निपुण भी था बल्कि प्रकृति की बनावट परमाणु भार के आधार पर है क्योंकि वह समय और स्थान पर बिल्कुल निर्भर नहीं हैं। इनके भीतर प्रकृति की माया भरी हुई है। तत्त्वों का यही ऐसा स्वभाव है जो किसी दशामें नहीं बदलता।

सबसे पहले रिचार्ड्स ने ताम्रम् पर कार्य आरम्भ किया, इसका कारण यह था कि इस पर अधिक कार्य हो चुका था और दूसरों की असफलता से बहुत कुछ बातें विदित हो गई थीं जैसे अवक्षेप का गैस से मिल जाना, वस्तुओं का गैस रहित तैयार करना, और साथ साथ यह भी देखना कि सब वस्तुयें जलरहित दशामें ताली गई हैं।

ताम्र-गन्धेन की छानबीन से जो कि भार गन्धेन द्वारा की गई भारम् के परमाणु पर बड़ी शंका उत्पन्न हुई। इसके भी हरिद और अरुणिक की रीति से किया गया और १३७ का जगह १३७.३७ संख्या स्थापित की गई। इस प्रकार रिचार्ड्स ने

आगे पैर बढ़ाया और खंशम्, दसनम्, मगनोसम् और खटिकम् इत्यादिके परमाणु भार क्रमानुसार ०७.६३, ६५.३७, २४३.२२, ४०.०७ रखे।

खंशम् पर कार्य करनेसे दो नये यन्त्रोंका आविष्कार हुआ—नेफेलोमीटर और बोलत यन्त्र जिन पर आजकल परमाणु भार निकालनेकी सत्यता निर्भर है। रिचार्ड्स ने विदित किया कि वस्तुओं का जलरहित दशमं तोलनेकी केवल यही एक रीति है कि उनके शुष्क मगडलमें गला कर तोला जाये। इस प्रकार खंशम् अरुण्डिको तोलनेसे कुछ हानि होती थी क्योंकि इस प्रकार कुछ उदजन अरुण्ड निकल जाती है इसलिये इसके इस गैसके मगडल में गलाना पड़ा। बादमें इसके बजाय नोषजन प्रयोगमें लाई गई। कार्ट्रिजकी छोटोसे नोकामें वस्तु रखली जाती थी और इसके एक अद्भुत रीतिसं तोलने वाली बोलतमें गिराया जाता था, इस प्रकार कुछ भाप उसमें रह जाती थी, इस गलती को हटानेके लिये एक ऐसी रीति निकाली गई जिससे कि वस्तुओंका वायुमें न निकालना पड़े।

यह तो एक ठीक बात है कि बहुतसी क्या, लगभग सब अनघुल वस्तुयें किंचित मात्र तो अवश्य ही घुल जाती हैं। रजत अरुण्ड भी जलमें कुछ घुल जाता है। इस कारण इस किंचित मात्र गलतीको दूर करनेके लिये यह जानना आवश्यक है कि कितना घुल जाता है इसलिये इस बातका विदित करनेकी चेष्टाकी गई कि कितना रजत नोषेत कितने अरुण्डिके बराबर है। इस प्रकार रजतअरुण्डिके घुल जानेसे दोनों रीतियोंमें गलती पड़ती है। प्रथम तो इस किंचित घुलन-शीलताके लिये कुछ करना चाहिये, दूसरे अवक्षेपन क्रियामें अन्त-बिन्दुका ज्ञात करना भी कोई सीधी बात नहीं है। रिचार्ड्स ने पहिले तो स्ट्रासकी रीतिके अनुसार कार्य किया अर्थात् प्रकाश प्रदर्शन की सहायतासे रजत अरुण्डिका भार विदित किया। यह एक विचित्र यन्त्र और रीति है जिसका वर्णन यहां पर नहीं किया जा सकता। पाठकोंको

यह पढ़ कर पता लग जायेगा कि कितने परिश्रम और धैर्यके साथ रिचार्ड्स ने इस कार्यका इस दशा पर पहुँचाया। यही कारण है कि उसकी दी हुई संख्याएँ अब तक ठीक मानी जाती हैं और मानी जायेंगी। यह उष्कोटि की उस निपुणता और चतुरताका दर्शाता है जिससे रिचार्ड्स ने अपने लिये वैज्ञानिक संसारमें एक ऊँचा स्थान प्राप्त किया।

यह तो रिचार्ड्स का एक कार्य रहा। अब भौतिक रसायन-सम्बन्धी अनुसन्धानों पर दृष्टि डालिये। रिचार्ड्स जब दूसरी बार जर्मनी गया तो उसकी जगत विख्यात भौतिक रसायनज्ञ प्रो० वाएट हाफ्से भेंट हुई। ओस्टवाल्ड तो उसे पहिलेसे जानता था। इस बार जब वह लौटा तो उसके हृदय पर वाएट हाफ्से के घाल सिद्धान्तका अधिक प्रभाव पड़ा। इसके पश्चात् उसने जो कुछ कार्य किया उसमें इस तत्त्वसे मुख्य सहायता ली। नकलम् और कोबल्टम् के परमाणु भार निकालनेमें इसकी भूलक साफ़ साफ़ दिखाई देती है इसके पश्चात् खटिकम् के परमाणु भारका फिरसे दोहराया और व्योमम् और पिनकम् के परमाणु भार निकाले। इन सब से रिचार्ड्सका आवर्त-संविभाग पर बड़ा सन्देह होने लगा और उसने कहा कि यह केवल एक मोटो सी बात है, इसमें अधिक सत्यता नहीं। सन् १८१२ में परमाणु भारों की स्थिरता पर एक घोर आक्रमण कई ओरसे हुआ। साडी, रसेल और फ्राइयाँ ने रश्मिशक्तिक परिवर्तनोंमें परमाणु संख्या और परमाणु भारके बदल जाने की सम्भावना बतलाई। रिचार्ड्स ने तुरन्त ही साधारण सीसम् और रश्मिशक्तिक परिवर्तनोंसे मिले हुये सीसम् के परमाणु भार निकाले। उसका यह ख्याल था कि शायद दोनों का एक ही संख्या मिले परन्तु इनमें अन्तर प्रतीत हुआ। इस प्रकार रिचार्ड्स ने समस्यानिकांकी सम्भावनाको सिद्ध किया। इसके पश्चात् इसका दूसरा प्रमाण या यह कहिये कि मुख्य प्रमाण ऐस्टनके कार्यसे हुआ।

रिचार्ड्स ने विद्युत् रसायन और ताप रसायन में भी अधिक कार्य किया उसका मुख्य कार्य प्रेन्स गिलबर्ट लुडसके साथ हुआ। इन दोनों ने मिल कर मिश्रण बाटरियोंकी सत्यताकी प्रतीति किया।

वान डर वाल्स (ब) भी रिचार्ड्स के लिये एक अद्भुत खोजका केन्द्र सिद्ध हुई। कुछ दिनों कार्य करनेसे यह पता लगा कि अधिक दबाव बढ़ा देने से ब की संख्या बदलती जाती है और इस प्रकार परमाणुओंकी संकाचनीयताकी नींव पड़ी और साथ साथ यह भी बतलाया कि किस प्रकार इस स्वभाव के प्रभाव से तत्त्वों के रासायनिक और भौतिक स्वभावोंमें परिवर्तन पड़ सकता है। उसका कहना था कि रसायन प्रक्रियामें परमाणुओं का आयतन घट बढ़ जाता है। उस समय बड़ा दबाव उत्पन्न हो जाता है क्योंकि उनके भीतरी आकर्षण पर इसका प्रभाव पड़ता है। बादमें प्रयोग करनेसे इस बातके कई प्रमाण मिले। उसने ज्ञात किया कि परमाणुविक संकाचनीयता परमाणु भार के साथ साथ आवर्त रूपमें घटता बढ़ता है और इसका परमाणु-आयतन से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है।

ताप-रसायनमें रिचार्ड्स ने मुख्यतया प्रयोगों पर ही लेख लिखे। सबसे पहिले तापक्रम मापकों पर कुछ सुधार किया और सन्धकम्, पांशुक्रम, और शोणमूसे उद्दीप्तिकी भिन्न अम्लोंके साथ मिलनेसे जो ताप उत्पन्न होता है उसकी ठीक ठीक नाप की। साथ साथ धातुओं के अम्लोंमें घुलनेके घोल-ताप की संख्या भी विवर्तकी। इस सम्बन्धमें कार्बनिक अम्लों पर भी कुछ कार्य किया।

इस प्रकार यह विदित होता है कि रिचार्ड्स ने किस चतुरता और धैर्यसे रसायन ज्ञानका बढ़ाया। जहाँ तक कहा जाता है, किसी रसायनज्ञ ने अपनी प्रयोगिक वस्तुओं को शुद्ध करनेमें इतना परिश्रम नहीं किया जितना कि इस महान् पुरुष ने। उसका कहना था कि कभी किसी चीज़का शुद्ध

नहीं समझना चाहिये और जो अपने फलोंके कभी बिल्कुल ठीक न खयाल करे वह ही पूरा वैज्ञानिक हो सकता है। सहस्रों बार शुद्ध करने पर भी उसका वस्तुओं की शुद्धताका विश्वास न होता था। उसकी प्रयोगिक चतुरता भी अद्भुत थी। वॉनन यन्त्र, नेफेलोमीटर इत्यादि उसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इस प्रकार उसने बहुतसे यन्त्र नये बनाये और बहुतसे अपने राशियोंसे सुधार कर ठीक दशामें प्रदर्शित किये। इन यन्त्रोंका किताबत प्रयोग होता है और किताबत समयका लाभ हुआ है यह किसी रसायनज्ञके दिमाग से बाहर नहीं है।

रिचार्ड्सका घरेलू जीवन भी बड़ा ही अनौकिक था। कहते हैं कि कभी उसका किसी ने रुष्ट होने नहीं देखा। उसके जीवन और कार्यकी सफलताकी दो मुख्य बातें थीं। “दया और साधारण चतुरता”। यह कहनेमें कोई आश्चर्य नहीं कि वह एक बड़े प्रसिद्धिवाला भी था। सर्वदा अपने कार्यमें मानसिक सत्ताका अपना आधार रखता था और इसकी भक्त उसके प्रत्येक कार्यमें दिखाई पड़ती है। सच कहिये तो उसकी मूर्ति ही सच्चाई और दयाकी जीती जागती देवी थी। यह कहना कठिन है कि उसका रसायन अर्थात् विज्ञानसे किताबत घनिष्ठ सम्बन्ध था इसका भले प्रकार दर्शाने के लिये उसके कुछ शब्दों का अनुवाद दिया जाता है।

“सर्व प्रथम मुझे मानसिक सत्यता पर जोर देना चाहिये। जिसका मानसिक सत्यता और सच्चाई की वृत्ति नहीं है वह विज्ञानमें कुछ नहीं कर सकता। दूसरे, किसीका केवल ज़बानी बातों पर या गणित द्वारा सिद्ध किये हुये सूत्रों पर ही पूरा विश्वास न कर लेना चाहिये जब तक कि उसके लिये प्रयोगिक प्रमाण न हो। प्रत्येक कार्यका भले प्रकार देखना चाहिये और उसके सुधारमें कोई कमी न रखी जाये। इसके पश्चात् बस धैर्य ही सहायक है। केवल लगातार कार्य करने और परिश्रमसे हम अपने कार्यमें सफल हो सकते हैं।”

रिचार्ड्सके लिये पदक पाना एक घरकी बान हो गई थी। सन् १९१० में रायल सोसाइटी लन्दन ने डेवी-पदक प्रदान किया। सन् १९११ में लन्दनकी रसायन सोसाइटी ने सबसे उच्च पदक (फैरेडे पदक) से सम्मानित किया। सन् १९१२ में गिड्स-पदक प्राप्त किया और सन् १९१४ में सबसे बड़ी वैज्ञानिक प्रतिष्ठा अर्थात् नोबेल पुरस्कार से सुशोभित किया गया।

१९२७ तक उसने रसायन क्षेत्रमें एक बड़े भारी जेनरलके समान कार्य किया परन्तु इसके बाद उसका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया और इस कारण उसे छुट्टी लेनी पड़ी। २ अप्रैल सन् १९२९

को ६० वर्ष की आयु में इस संसारसे विदा मांगी।

यद्यपि रिचार्ड्स इस समय नहीं है परन्तु उसका कार्य संसारके प्रत्येक कोनेमें समाया हुआ है। उसकी मृत्युसे नवयुवकोंके मन को वैज्ञानिक खोजके प्रेमसे ललचाने वाला पुरुष उठ गया, एक खोज का मुख्य संस्थापक संसारमें उठ गया जिसकी जगहका भरनेमें शायद पचासों वर्ष लगेंगे। रिचार्ड्सकी जीवनी पढ़ कर किस मनमें कार्य करनेकी उमंग उत्पन्न नहीं होती। वास्तवमें उसका जीवन भी आजकलके निराश नवयुवकोंके लिये एक उदाहरण है।

कार्बनिक रसायन का विस्तार

भाग १

लीविग और दोलर के अनुसंधान

गे

लेलुपाक व थेनार्ड ने १८१० ई० में कार्बनिक रसायन का विस्तार कम होने का कारण कार्बनिक विश्लेषण की कमी बतलाया था। यह कथन उस समय के अनुसार ठीक भी था परन्तु इसके बाद ही वैज्ञानिकों का प्रवृत्त कार्बनिक रसायन की ओर आकर्षित होने लगी। उस समय प्रत्येक कार्बनिक वस्तु के बनने का श्रेय एक जीव संवन्धो शक्ति को दिया जाता था और यही कार्बनिक रसायन के विद्युद्बल का मुख्य कारण था क्योंकि प्रत्येक रसायनज्ञ को यही विचार रहता था कि कार्बनिक वस्तु के बनने के लिए उक्त शक्तिका होना आवश्यक है इस लिए किसी ने भी प्रयोगशाला में कार्बनिक वस्तु बनाने की चेष्टा न की।

कार्बनिक रसायन केवल पिछले १०० वर्ष में ही इतनी बढ़ गई है कि इसकी सीमा का खोज लगाना साधारण कार्य नहीं है। इसके विस्तार को भले प्रकार जानने के लिए १८ वीं शताब्दी के अन्तिम समय का दशा पर दृष्ट डालना उपयोगी होगा। सन् १६७५ में लेमरी ने सब वस्तुओं को दो भागों में बांटा। १ खनिज २ वनस्पतिक। इसके बाद बरथोले और प्राउट ने बतलाया कि कार्बनिक वस्तुओं में कार्बन का होना आवश्यक है उनके अणु बहुत गूढ़ और साधारण वस्तुओं के अणुओं से कहीं भारी होते हैं और ये ऐसा ही विधियों से पृथक् की जा सकती हैं जिनमें कोई रासायनिक क्रिया नहीं होती। जैसे सोलना, छानना इत्यादि।

मेकर ने फिलाजिस्टन सिद्धान्त के समय यह बतलाया था कि प्रत्येक कार्बनिक वस्तु में फिजिस्टन होता है जिसका लैवासिये ने खोज किया। इसी प्रकार ब्लैक, बर्गमन, शॉले इत्यादिने कई प्रकार के नये नये सिद्धान्त रखने का चेष्टा का। यदि वास्तव

में देखा जाय तो शॉले को उस समय के सब कोटि के कार्बनिक रसायनज्ञों में गिनना चाहिये। गैलिकाल काष्ठाग्ल और बहुत प्रकार के यौगिक इसी पुरुष के अनुसंधान हैं। उस समय सबसे बड़ी असुविधा विश्लेषण किया की थी। यद्यपि लैवासिये ने कार्बनिक वस्तु को ओषजन की उपस्थिति में जला कर इस प्रकार निकली हुई कार्बन द्विआंशिक को माप कर यौगिक का गठन निकालने की रीति निकाली थी परन्तु उससे भी अधिक सफलता प्राप्त न हुई क्योंकि बहुत से यौगिकों में ओषजन होने के कारण इस रीति से उसके गठन का पूरा ज्ञान होना असम्भव था।

जैसा कि पहिले बतलाया जा चुका है गेलुपाक व थेनार्ड ने कार्बनिक यौगिकों का संगठन निकालने की एक नई रीति निकाली जिसमें उन्होंने ओषजन के बजाय ताम्रआंशिक का प्रयोग किया। इस रीति से जो लाभ कार्बनिक रसायन को हुआ है उसका अनुमान केवल कार्बनिक रसायनज्ञ ही लगा सकते हैं। कार्बनिक रसायन उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में तक टूटा फूटा ही दशा में रही। इसी समय दा लोन ऐम् व्यक्ति का जन्म हुआ जो कि मुख्य रूप से कार्बनिक रसायन के निर्माता कहे जा सकते हैं।

जस्टस वान लीविग

१८०३—१८७३

लीविग का जन्म १८०३ ई० में डर्मस्टड में हुआ जहाँ पर विश्वविद्यालय मर्क वार्पोलय जो कि रसायनिक पदार्थों के लिये प्रसिद्ध है स्थापित है। उसका पिता तेल और रज्जों का व्यापार करता था और वास्तव में यही कारण लीविग के रसायनज्ञ होने का है। आरम्भ से ही उनका रसायन की ओर प्रवृत्ति रहने लगी। जब उसके स्कूल मास्टरने पूछा कि तुम काम क्यों नहीं करते—तुम बड़े बेवकूफ हो उस पर युवक लांविगने उत्तर दिया कि मैं रसायनज्ञ हूँगा। यह बात बड़ी हास्यप्रद हुई परन्तु पाठक देखेंगे कि वास्तव में लांविग अपनी शताब्दी का सब से बड़ा कार्बनिक रसायनज्ञ हुआ। १५ वर्ष की अवस्था में लीविग

पाठशालामें भेजा गया। वहाँ पढ़नेके बाद एक वैद्यके पास नौकर हो गया। यहाँ रह कर उसने भिन्न-भिन्न वस्तुओं का बनाना भले प्रकार सीख लिया परन्तु लीबिग का मन इन बातोंमें लगता ही नहीं था। वह सर्वदा कहा करता था कि वैद्यां के कार्यालयोंमें रसायन नहीं प्राप्त हो सकता। यह तो केवल अपनी औषध सम्बन्धी पदार्थ ही बनाना जानते हैं। उसका मन तो रसायन की खोज के लिये हिलोरे लिया करता था। भला ईश्वर कब उसका वैद्यां की दूकानोंमें छोड़ सकता था। उसे तो हमारे ज्ञान का निर्माता होना था। जब कि वह वैद्य के यहाँ नौकर था उसने बाजारों का तमाशा दिखाते हुए देखा था जा रजत फलमिनेत (रजतम् विस्फुटेत) का प्रयोग किया करते थे। लीबिग चंचल हृदय तो था ही। एक रात दूकानमें इस चीज को बना बैठा जिससे कहते हैं कि दूकान की छत उड़ गई। यह बड़ी घटना थी जिसने उसके जीवन को बिस्कुल बदल दिया। अब लीबिग इस वैद्यके कार्यालय को छोड़ कर रसायन की खोजमें चल दिया। उसने अपने पिता से विश्वविद्यालय जाने का अनुरोध किया। सुहृद् पिता ने अपने प्यारे लीबिग को बान विश्वविद्यालयमें भेज दिया १८२० में डिग्री प्राप्त करके लीबिगकी इच्छा रसायनिक खोज की ओर बढ़ी परन्तु इसके लिये उसे जर्मनीमें अधिक सुविधा न दिखाई पड़ी और पूरा विश्वास हा गया कि रसायनज्ञ होने के लिये तो कहीं बाहर ही जाना पड़ेगा। इस समय तक लीबिगकी चतुराई की महिमा डर्मस्टैड के राजकुमार के कानों तक पहुँच चुकी थी। बहुत कुछ परिश्रम के बाद हीमियन सरकार ने लीबिग को पैरिसमें पढ़ने के लिये छात्रवृत्ति दी। १८२३ ई० में लीबिग पैरिस गया और वहाँ पर दैवयोग से अलेक्जेंडर वान हमबोस्ट से भेंट हुई जो कि नवयुवकों की उन्नति के लिये सर्वदा उनके साथ परिचय रखता था। हमबोस्ट महाशय ने लीबिग को गेलुसाक के सामने उपस्थित किया और इस प्रकार नवयुवक की मनोकामना पूरी हुई।

गेलुसाक की प्रयोगशाला में लीबिग ने विस्फटिकात्मक पर कार्य आरम्भ किया जो अब तक रसायनज्ञों की दृष्टि में एक उच्च कोटि का कार्य समझा जाता है। इसी समय १८२४ ई० में ऐरलै गेन विश्वविद्यालय ने लीबिग को पी-एच० डी० की उपाधि प्रदानकी और उसी वर्ष वह गीसेनके छोटे से विश्वविद्यालय में रसायन अध्यापक नियुक्त किया गया। परन्तु यहाँ पर लीबिगको बड़ा परिश्रम करना पड़ा क्योंकि प्रयोगशाला में सुविधाये कम थीं और अधिक पढ़ाने के कारण खोज करने के लिए कम समय मिलता था। लीबिग के गीसेन आने पर एक छोटी सी जगह मोल ले ली गई जिसमें लीबिग ने बड़े परिश्रम से काम आरम्भ कर दिया। कौन जानता था कि इन ही छोटी कांठरिया में जगत विख्यात कार्बनिक रसायनज्ञ उत्पन्न होंगे। चारा ओर से उत्साहित विद्यार्थी मुंडा में आने लगे यद्यपि प्रयोगशाला बहुत छोटी था पर यहां की नई नई खोजों और लीबिग के व्याख्यानों का जनता पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि थोड़े ही दिनों में इस प्रयोगशाला में कार्य करने की आज्ञा मिलने का विद्यार्थी लोग अपने जावन की विशेष घटना मानने लगे।

लीबिग केवल एक विषय पर ही कार्य नहीं करता था उसके कार्य की सीमा अपार थी। यद्यपि शुरू में उसने कार्बनिक रसायन पर ही अधिकतर प्रयोग किये परन्तु बाद में कृषि सम्बन्धी और स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यों में भी अति रुचि लेने लगा था। रात दिन कार्य करने और शिष्यों को पढ़ाने से लीबिगका स्वास्थ्य बिगड़ गया यहाँ तक कि जब वह १८५२ में म्यूनिक विश्वविद्यालय में मुख्य अध्यापक के पद पर नियुक्त किया गया तो उसने केवल इसी शते पर कि वह पढ़ाने का कार्य न करेगा इस पद को ग्रहण किया।

कार्बनिक रसायन में विश्लेषण क्रियाओं का प्रयोग करने वाला यह पहिला ही मनुष्य था। उसने भिन्न भिन्न प्रकार की रीतियाँ निकाली और अपने शिष्यों को सिखलाया। वह सर्वदा प्रयोगशाला में

विश्लेषण क्रियाओं पर मुख्य रूप से जोर देता था। यह उसी के कार्य का फल है कि कार्बनिक रसायन में विश्लेषण क्रिया को इतना स्थान मिला हुआ है। लीबिग के इस प्रयोग का सबसे समर्थन क्रिया और इसी के आधार पर सब प्रयोग शालाओं में कार्य आरम्भ हो गया। लीबिग का नाम कार्बनिक विश्लेषण के साथ सर्वदा जीवित रहेगा। यद्यपि लैवासिये, गेलुसाक इत्यादिने इस पर बहुत कुछ कार्य किया और विश्लेषण क्रियाओं को ठीक भी किया परन्तु लीबिगने कमसे कम भस्मीकरण रीति (Combustion Process) का तो इतना साधारण बना दिया था कि आज तक पूरे १०० वर्ष के बाद भी इसमें कोई अन्तर नहीं हुआ है। उस समय लीबिग ने कहा था कि मैंने इस रीति को इतना साधारण बना दिया है कि एक चतुर बन्दर भी इससे काम कर सकता है।

जिस समय लीबिग गेलुसाक की प्रयोगशाला में था तो उसने विभुट्टाकाल पर कार्य किया था। उसी समय (१८२२ ई० में) बोलरने श्यामिकाकाल पर अपना कार्य प्रकाशित किया। इन दोनों वस्तुओं का रासायनिक अनुपात एक ही है परन्तु स्वभाव में दोनों भिन्न भिन्न हैं। बरजेल्स्यूम उस समय जीवित था। उसका कथन था (और सब रसायनज्ञ मानते भी थे) कि प्रत्येक वस्तुका स्वभाव रासायनिक अनुपात (Chemical composition) पर ही निर्भर है, अर्थात् भिन्न भिन्न स्वभाव वाली वस्तुओं का रासायनिक अनुपात भी भिन्न होना चाहिए परन्तु यह एक उदाहरण ऐसा उत्पन्न हो गया जहाँ कि भिन्न भिन्न स्वभाव की वस्तुओं का रासायनिक अनुपात एक ही था। इस पर लीबिग और बोलर में वाद-विवाद आरम्भ हो गया। लीबिग ने बोलर के विश्लेषण को गलत बताया परन्तु इस प्रकार यह झगड़ा तै नहीं हो सकता था क्योंकि बोलर को अपने कार्य पर दृढ़ विश्वास था। अन्त में बोलर और लीबिग ने एक दूसरे के साथ कार्य आरम्भ किया और दोनों का कथन ठीक निकला। पाठकों का

याद होना चाहिये कि उस समय तक यह अनहोनी बात समझी जाती थी कि भिन्न भिन्न स्वभाव की दो वस्तुओं का रासायनिक अनुपात एक ही हो सकता था। बस यही से समरूपता (Isomerism) की नींव पड़ी। यह पहला ही महत्व पूर्ण उदाहरण था जिसने रासायनिक जगत के इस झूठे सिद्धान्त को उड़ा दिया। बरजेल्स्यूमने जो बोलर का गुरु था इस सिद्धान्त को केवल अपनाया ही नहीं परन्तु इसका पूरे तोरसे समर्थन किया। इसके पश्चात् लीबिग और बोलर में घनिष्ठ मित्रता हो गई जो सारे जीवन तक रही। लीबिगके महत्व पूर्ण और सबसे विख्यात कार्य अधिकतर बोलर के साथ ही हुये। इस जाँड़े में एक अद्भुत बात है यद्यपि दोनों अपने समय के बड़े क्या सब बड़े कार्बनिक रसायनज्ञ थे परन्तु विचार और स्वभाव से एक दूसरे के विरुद्ध भी इतने थे जैसे उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव। इसका घुत्तान्त आगे दिया जायगा। सरलता और सुगमता के लिये ऐसे कार्य जो बोलर और लीबिग ने मिल कर किये हैं यही पर दिये जायेगे, इनसे पाठक यह न समझें कि बोलर का उनमें कोई श्रेय नहीं है।

लीबिग और बोलरके समयमें कार्बनिक रसायन में प्रति दिन आल्डोलन सा रहा करता था। १८२० के बाद के जब कि बरजेल्स्यूम का योगिक सिद्धान्त (Dualistic system) प्रयोग में था और वैज्ञानिक इसका प्रयोग कार्बनिक योगिकों में करने में तत्पर थे, परन्तु इस विषयमें सब का भिन्न भिन्न मत था। सन् १८३२ में लीबिग और बोलर ने कड़वे बादामके तैल पर अपना कार्य प्रकाशित किया। जैसा कि सब जानते हैं इस तैलमें विशेष कर बानजावील मद्यानाई (Benzaldehyde) होता है। लीबिग और बोलर ने इसका ओषदी करण करके बानजाविकाकाल तैयार किया तथा और क्रियायें करके बानजाइन और हरिन् के प्रभाव से बानजावील हरिद तथा हरिद से अरुणिद और नैलिद बनाए। इस प्रकार लीबिग और बोलर ने बानजावील नाम का मूल

इन सब योगिकों में दर्शाया। क. उ. ओ. मूल का नाम बानजाबील रक्खा। पाठक देखेंगे कि यह सूत्र आनकल के क. उ. ओ. से दूना है वरना बिस्कुल वही है। लीबिग और बोलर के अनुसार बानजाव मयानाई बानजाबील का उद्भजन के साथ युक्त योगिक है। और इसी प्रकार बानजा-विकार्ल और बानजाबील हरिद भी इस मूल से बनते हैं। इस कार्य का बरजेस्यूम पर बड़ा प्रभाव पड़ा और उसने लीबिग तथा बोलर दोनों को इस कार्य पर बधाई दी और अपनी वार्षिक रिपोर्ट में भी उनकी प्रशंसा की।

इसके पश्चात् लीबिग और बोलर ने मद्य का मूल क. उ. का बतलाया परन्तु इसके अपनाने में बरजेस्यूम का जग देर लगा क्योंकि ऐसा करने में ओषजन का कोई स्थान न रहता था और इस कारण उसके सिद्धान्त के अनुसार जिसमें ओषजन मूल में होना आवश्यक था यह बात उसके ठीक न सिद्ध हुई। परन्तु कुछ दिन बाद बरजेस्यूम ने ओषजन का मूल में आवश्यक होना छोड़ दिया परन्तु तबों के योग पर वह हट ही रहा।

टामस मेडम ने १८३२ ई० में बहुत्तारिक (Polybasic) अम्लों पर कार्य करके जगत् का दिखवा दिया कि यह कह देना कि प्रत्येक अम्ल एक-त्तारिक है ठीक नहीं है। इसी कार्य के आधार पर लीबिग ने १८३७ में कार्बनिक अम्लों पर कार्य आरम्भ कर दिया। इस कार्य में लीबिग डूमाके साथ लगा हुआ था परन्तु एक स्थान में दां तलवार कैसे रहे। बस इस कार्य के बाद दोनों फिर अलग हो गये। इमत्रिकार्ल, निम्बुसकार्ल, श्याम मूत्रिकार्ल इत्यादि को लीबिग ने बहुत्तारिक भिन्न किया। लीबिग की मुख्य शर्त यह थी कि यदि कोई अम्ल दो प्रकार के तारों से निश्चित लवण बनावे तो उसको बहुत्तारिक समझना चाहिये, यद्यपि इस कार्य में लीबिग का सफलता हुई परन्तु यह शर्त बिस्कुल ठीक न थी। क्योंकि इसके अनुसार लीबिग ने गन्धकार्ल को भी एक-त्तारिक ही बतलाया। इस कार्य के करने में उसने

अम्लों के ओषजन सिद्धान्त का पूरा पूरा विरोध किया परन्तु अन्त में बरजेस्यूम का यह बात माननी ही पड़ी।

लीबिग और बोलर ने मूत्रिकार्ल पर भी काफी अच्छा कार्य किया था। उन्होंने दिखलाया कि मूत्रिकार्ल पर नेषिकार्ल के प्रभाव से ऐलकाष्टन (aloxan) बनता है। इस कार्य में सब से महत्व की बात यह सिद्ध हुई कि मूत्रिकार्ल और ऐलकाष्टन में घनिष्ठ सम्बन्ध है और मूत्रिकार्ल की बनावट ऐलकाष्टन जैसी होना चाहिये। रसायनिक कार्य तक ही लीबिग की पहुँच न थी। वह खाद्य संबंधी और कृषि संबंधी कार्यों में पूरा पूरा भाग लेता था। लीबिग का नाम केवल रसायनिक संसार में ही नहीं, मारे जगत में प्रसिद्ध है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति “भांस रस” का जानता है जो लीबिग के अद्भुत मस्तिष्क का कार्य है। इस वस्तु का जीव संबंधी रसायन में अधिकतर प्रयोग है।

कृषि के लिये जो कार्य लीबिग ने किया उसका वर्णन साधारण शब्दों में करना असम्भव है क्योंकि उसके पहिले यह कोई नहीं जानता था कि बार बार पौधे उगने से पृथ्वी क्षीण हो जाती है। सब से पहिले लीबिग ने ही यह बतलाया कि पृथ्वी में अकार्बनिक लवण डालकर उसकी शक्ति फिर बढ़ सकती है, क्योंकि पौधों को नेषजन की आवश्यकता है और बार बार पौधे उगने से पृथ्वी का नेषजन व्यर्थ हो जाता है। लीबिग ने अपनी आयु के अन्तिम वर्ष कृषि संबंधी कार्यों में व्यतीत किये। लीबिग के नाम पर जगत विख्यात भ्रमका (Condener) भी प्रसिद्ध है इस यन्त्र को सब से पहिले उसी ने बनाया था।

इन सब कार्यों के अतिरिक्त लीबिग का साहित्य-कार्य भी उसके वैज्ञानिक कार्यों से कम न था उसने कार्बनिक रसायन सम्बन्धी कई पुस्तकें लिखीं और कई पत्रिकाओं का सम्पादन भी लीबिग के ही हाथों से होता था। यहाँ तक कि एक पत्रिका का

नाम लीबिग पत्रिका अभी तक प्रसिद्ध है।

संसार भर का कार्बनिक गुरु लीबिग को ही कहा जा सकता है। उसने ही जर्मनी में सब से पहिले कार्बनिक रसायन की शिक्षा आरम्भ की और संसार भर के विद्यार्थी उसकी प्रयोगशाला में कार्य करने आने लगे। हैफमैन सा रसायनज्ञ जो इंग्लैंड में कार्बनिक रसायन का जन्मदाता कहा जाता है, बायर जो कि ऐमिल फिशर और विस्सट्टेर जैसे नोबेल पुरस्कार विजेताओं का गुरु, केकूले कार्बनिक रसायन का प्रमुख सिद्धान्ती इत्यादि लीबिग की ही प्रयोगशाला से उत्पन्न हुये थे। धन्य है लीबिग को जिसके परिश्रम से हम आज कार्बनिक रसायन जो रसायन का केवल एक भाग ही किसी विज्ञान शाखा से कम नहीं है। लीबिग अपने शिष्यों और सहायकों से अधिक कार्य लेता था। और कोई उसकी प्रयोगशाला में जाकर ऐसा नहीं रहा जिस पर उसके सहाह का प्रभाव न पड़ा हो। उसकी मूर्ति और वाणी में अद्भुत जादू था। लीबिग के मन में सहनशीलता कम थी वह सच्चाई के सामने किसी की परवा न करता था। बहुत शीघ्र उसकी दूसरों से शत्रुता हो जाती थी। परन्तु आश्चर्य और गौरव की बात तो यह है कि इस पर भी उससे सब प्रेम करते थे। जितना लीबिग क्रोधी था उतना ही बोलर सहनशील था। यह इन दोनों की मित्रता का अद्भुत उदाहरण है।

लीबिग के लिये पदक और पुरस्कार एक बर की बात थी। वह लगभग सभी समितियों का सदस्य था और समस्त रसायनिक सभाओं ने उसको अपना सदस्य चुना था। सन् १८५३ ई० में लीबिग म्यूनिख विश्वविद्यालय में मुख्य अध्यापक नियुक्त किया गया। यहां पर लीबिग ने अद्भुत परिश्रम के साथ कार्य किया। लीबिग को जर्मन सरकार से बैरन (Baron) की उपाधि भी मिली थी। यह ही नहीं, लीबिग का मान जर्मनीमें ही नहीं समस्त देशोंमें स्वेच्छा की ही भांति था। महाराणी विक्टोरियाके समयमें

लीबिगको इङ्गलैंडमें वहां की रसायनिक दशा पर सम्मति देनेके लिये बुलाया गया। मस्य कहनेमें तो वह प्रसिद्ध था ही, वहांके सब कालेजोंको देखकर यही कहा कि इङ्गलैंड के रसायनज्ञ अपने आपको रसायनज्ञ कहनेमें लज्जा खाते हैं। बस लीबिगके कहते ही महाराणीने अपने देशमें साइंस कालेज खोलने का प्रस्ताव किया जिसके अनुसार लंदनमें “राजसी कालेज” (इम्पीरियल कालेज) खोला गया। अब यह प्रश्न उठा कि इनका सबसे मुख्य अध्यापक कौन नियत किया जाय, सर्वे सम्मति से यह ही निश्चय हुआ कि लीबिगके किसी शिष्य को बुलाना चाहिये। लीबिग ने अपने शिष्य हैफमैन को इस पद पर नियुक्त किया जिसकी कीर्त्ति का बरण आगे किया जायगा।

लीबिग कार्य करनेमें इतना लिप्त रहता था कि उसने अपने स्वास्थ्य की बिलुकुल परवा न की और अन्तमें स्वास्थ्यके कारण विश्वविद्यालयसे विदा मांगी। उसके कुछ ही दिनों पश्चात् १८७३ में इस रसायनके गुरुने सर्वदाके लिये इस संसार को सूना कर दिया। अभी तक प्रतिष्ठित इतिहास रचयिताओं का कथन है कि लीबिगके बाइ ओस्टवाल्ड ही इतना बड़ा गुरु हुआ है। लीबिग का जीवन पढ़ने से मन्द से मन्द हृदयमें भी कार्य करने को समग्न ठठने लगती है। लीबिग जैसे महा पुरुष सर्वदा संसारमें नहीं आते। धन्य है उनकी जिन्हें इस महान् गुरुके कर कमलोंमें पढ़ने का सोभाग्य प्राप्त हुआ।

फ्रेडरिक बोलर

१८००—१८८२.

बोलर का जन्म पेशरशीममें १८०० ई० में हुआ था। उसका पिता यद्यपि अधिक धनवान तो न था परन्तु बोलर को उसने मारबर्ग विश्वविद्यालयमें भेज दिया जहां बोलरने वैद्यक पढ़ना आरम्भ कर दिया। बोलर को वैद्यक से इतनी रुचि नहीं थी और इसी कारण उसने मारबर्ग विद्यालय छोड़ कर हाइडेलबर्गमें उमेलन की शरण ली। २३ वर्ष की

अवस्था में बोलर बरजेल्स्यूस की प्रयोगशाला में गया। इसके कुछ दिनों पश्चात् बोलर कामेल विश्वविद्यालय में अभ्यापक नियुक्त हुआ। इसके पाँच वर्ष पश्चात् गोटीगेन विश्वविद्यालय में उसके मुख्य अभ्यापक नियुक्त करके सम्मानित किया। लीबिग का वृत्तान्त उक्त समय यह बात दिया गया था कि बोलर का अधिकतर कार्य लीबिग के साथ हुआ। यहां पर केवल वही कार्य दिये जायेंगे जो उसने स्वयं किये। यह पहिले ही बात दिया गया है कि कार्बनिक रसायन में जैव सिद्धान्त (vitalistic theory) का जोर था परन्तु धन्य है बोलर को जिसने इस अनावश्यक सिद्धान्त की जड़ उखाड़ दी। मूत्रिया (urca) का जहां भी वर्णन आता है वहीं बोलर का नाम भी सूर्य सा चमक पड़ता है। मूत्रिया जो कि कार्बनिक वस्तु है बोलर ने पाशुंज श्यामिद से तैयार की। परन्तु उस समय भी बहुत से वैज्ञानिक कहने लगे कि पाशुंज श्यामिद कार्बनिक वस्तु है और साथ साथ यह जीवों के सींगों में तैयार होती है। इस कारण यह नहीं माना जा सकता कि कार्बनिक वस्तु बिना किसी जीव शक्ति के अकार्बनिक वस्तुओं में बन सकती है। परन्तु साथ ही साथ बरथोलोने जिसका वृत्तान्त आगे दिया जायगा कर्बन और उदजन के मिला कर सिरकोलिन (acetylene) तैयार करके इस सिद्धान्त को बिल्कुल ही जड़ से उड़ा दिया।

बोलर ने बरजेल्स्यूस के साथ भी कुछ कार्य श्यामिकास्ल पर किया और साथ साथ इसकी समरूपता भी दर्शाई जो कि श्याममूत्रिकास्ल के साथ है।

बोलर को बहुत से वैज्ञानिक ऐल्डमीनयम या स्फटम् का मुख्य ज्ञाता कहते हैं। उसने टिटैनम् इत्यादि बहुत सी धातुओं पर अच्छा कार्य किया।

बोलर उच्च काटि का गुरु था। जहां तहां से वैज्ञानिक उसके पास कार्य करने के लिये आते थे। यह कहना कठिन है कि बोलर और लीबिग में कौन बड़ा था। दोनों मस्तिष्क में एक दूसरे से बड़े चढ़े थे।

लीबिग राजनीतिक कामों में भी भाग लिया करता था परन्तु बोलर केवल अपने कार्य में ही लगा रहता था। बोलर लीबिग की भाँति क्रोधी न था। वह सर्वदा शील और मधुर स्वभाव से वर्तव करता था कोई भी ऐसा मनुष्य न था जो उससे शत्रुता रखता हो? उसके व्याख्यान अति गूढ़ परन्तु साधारण होते थे और प्रत्येक व्याख्यान में उसके प्रयोग दिखाने का बड़ा शौक था। बोलर विशेषतः प्रयोगिक था और अधिक सिद्धान्तिक न था परन्तु लीबिग में यह बात न थी। वह सिद्धान्तों में काफी भाग लेता था। जब कभी लीबिग किसी से रुष्ट होता था तो बोलर उसका क्रोध कम करने की चेष्टा करता था। कभी कभी ऐसा करने में उसके स्वयं भी डाट खानी पड़ती थी, परन्तु बोलर की सी सहनशीलता प्रत्येक व्यक्ति के भीतर होना कठिन है। बोलर को वैज्ञानिक संस्थाओं अपना सदस्य चुनने में बड़ा मान सम्पत्ती थी। यह पहिले तो बात ही चुके हैं कि बोलर सरकारी कार्यों में अधिक भाग नहीं लेता था इसलिए उसके लीबिग की भाँति वैरन की उपाधि नहीं मिली।

बोलर की प्रयोगशाला लीबिग की प्रथा के भाँति भरी रहती थी। मुख्य कर अमेरिकी अधिकतर वैज्ञानिकों ने बोलर की ही अध्यक्षता में कार्य किया था। लीबिग और बोलर दोनों को वस्तुतः कार्बनिक रसायन का निर्माता मानना चाहिये, क्योंकि इन्हीं के परिश्रम से कार्बनिक रसायन ने अपना वर्तमान रूप धारण किया है। अब दूसरे भाग में डूमा, गरहर्ड इत्यादिके कार्यों के वर्णन करने का प्रयत्न किया जायगा। बोलर और लीबिग जैसे अद्भुत व्यक्तियों का ही कार्य आज हमें रसायन सिखा रहा है। यह ऐसा युग है कि एकका नाम लेते ही दूसरे का नाम होंठों पर आ जाता है। ८२ वर्ष की आयु के पश्चात् बोलर ने १८८२ में सब्दा के लिये इस संसार से विदा मांगी।

कार्बनिक रसायन का विस्तार भाग २

कार्बनिक रसायन का सैद्धान्तिक आन्दोलन

पिछले भाग में यह बतलाया जा चुका है कि कार्बनिक यौगिकों के बनने का श्रेय मुख्य रूप से एक जीव सम्बन्धी शक्ति को जिसका नाम (Vitalis force) था दिया जाता था। इस सिद्धान्त के गलत होने का प्रमाण सब से पहिले फ्रेडरिक वोल्गर ने जिसका वृत्तान्त पिछले भाग में बतलाया जा चुका है मृत्रिया के संश्लेषण से दिया था परन्तु उस समय के हठी वैज्ञानिकों ने इस प्रमाण के विरुद्ध सैकड़ों अनहोनी बातें खड़ी कर दीं परन्तु इसके कुछ समय पश्चात् विश्व विख्यात फ्रांसीसी रसायनज्ञ मारसेला बरजेल्लो ने (सिरकीलिन) का शुद्ध उदजन और कबन से संश्लेषण करके इस गलत सिद्धान्त की नींव जड़ से ही उखाड़ डाली। वस इस समय से यह माना जाने लगा कि कार्बनिक यौगिक भी अकार्बनिक यौगिकों की भांति प्रयोगशाला में बिना किसी जीव-शक्ति की सहायता के बन सकते हैं। जिस समय का यह वृत्तान्त है उस समय रसायन का प्रमुख नेता बरजेल्ल्यूम का लोहा रसायनिक संसार में माना जाता था। पाठकों को स्मरण होगा कि बरजेल्ल्यूम ने ही सब से पहिले रसायनिक यौगिक की उत्पत्ति का कारण बतलाया। बरजेल्ल्यूम को सर्वदा “क्यों” का उत्तर देने का बड़ी लालसा रहती थी। इसी कारण उसने अपने अमूल्य समय का अधिक भाग इस गवेषणा को सुलभाने में दिया। उसका कथन था कि प्रत्येक यौगिक में दो प्रकार की विद्युत होती है अर्थात् धनात्मक और ऋणात्मक। उसका पूरा सिद्धान्त पहिले ही भली प्रकार समझा दिया गया है और इसलिये यहां इतना ही कहना आवश्यक है। जब कि बरजेल्ल्यूम ने अपने इस सिद्धान्त का कार्बनिक यौगिकों में प्रयोग करना आरम्भ किया तो अधिक सफलता प्राप्त न हुई। इस सिद्धान्त को सबसे बड़ा धक्का एक फ्रांसीसी नवयुवक अर्थात् डूमा के महत्वपूर्ण अनुसन्धान से लगा। इस अनुसन्धान से यह सिद्ध हो

गया कि हरिन् जो कि बरजेल्ल्यूम के अनुसार ऋणात्मक है उदजन को सिरकाम्ल जैसे पदार्थ में से हटा सकती है अर्थात् सिरकाम्ल से हरो-सिरकाम्ल बन सकता है। यह बात बरजेल्ल्यूम के सिद्धान्त के बिल्कुल विरुद्ध थी इसलिये बरजेल्ल्यूम ने इसकी घोर समालोचना की और डूमा की एक न मानी। डूमा ने भी कार्बनिक रसायन के सैद्धान्तिक क्षेत्र में काफी भाग लिया। उसके नाम पर अब तक Ethyl theory (जलील सिद्धान्त) प्रसिद्ध है। डूमा ही के समय में उसके देश के निवासी दो व्यक्ति ऐसे उत्पन्न हुये कि जिनका नाम सर्वदा के लिये स्वर्ण अक्षरों में लिखा जाने योग्य है। कार्बनिक रसायन का सैद्धान्तिक उलफट से निकालने में जो भाग इन्होंने लिया वह शायद के-क्यूले के अतिरिक्त और किसी ने नहीं लिया। इनका नाम था गरहर्ड और लोरे। परन्तु साथ ही साथ जितना अत्याचार इन दोनों पर उस समय के बड़े बड़े रसायनज्ञों ने किया उसका भी अनुमान लगाना कोई हंसी खेल नहीं है। फ्रांस में प्रत्येक वैज्ञानिक का पैरिस में कार्य करना एक गर्व की बात समझी जाती है। इसी कारण इन दोनों ने यह चाहा कि वहां चलकर कार्य करें परन्तु क्योंकि यह दोनों वैज्ञानिक समस्याओं में डूमा के विरुद्ध रहते थे इस कारण डूमा ने इन्हें कभी पैरिस में न घुसने दिया क्योंकि उस समय फ्रांस में उसका लोहा तप रहा था। परन्तु तब भी बेचारे दोनों रसायनदेवी की पूजा में तत्पर लगे रहे। इस छोटी सी भूमिका के पश्चात् डूमा, गरहर्ड, लोरे इत्यादि के जा इस समय के मुख्य रसायनज्ञ हैं अनुसन्धान दिये जायेंगे।

जॉ. एन्स्टिन आर्टिंग डूमा

१८०८—१८८४

डूमा का जन्म १८०० ई० में १४ जुलाई को एंग्लेस में हुआ। १४ वर्ष की आयु होने पर एक अत्तार की दूकान पर नौकर हो गया परन्तु वहां अधिक समय न रहा। क्योंकि डूमा को केवल अपना समय इस प्रकार ही नहीं बिताना था बल्कि

उसके हृदय में वैज्ञानिक खाज की लालसा भरी हुई थी। डूमा एक दिवस पैदल ही जनेवा को जहाँ पर डेवला राइब जैसे महान पुरुष अध्यापक थे चलदिया। वहाँ पर ले रोयर की प्रयोगशाला में डूमा ने इतना उत्तम और महत्व पूर्ण कार्य किया कि वैज्ञानिक जगत् में उसकी भूम मच गई। यहाँ तक कि बरजेल्स ने भी उसके इस कार्य की अपनी वार्षिक रिपोर्ट में बड़ी प्रशंसा की और जिस समय अलेक्जेंडर वान हमबोल्ट जगत यात्रा से जनेवा में होकर जा रहा था तो इसने डूमा से भेंट की और उससे प्रसन्न होकर पेरिस चले आने का प्रस्ताव किया। विल्ली के भागों झीका टूट पड़ा। डूमा तो यह चाहता ही था कि कोई अच्छी प्रयोगशाला कार्य करने को मिले तुरन्त पेरिस को प्रस्थान किया और १८२३ में फ्रांस की राजधानी में अपना कार्य आरम्भ कर दिया। डूमा का सर्व प्रथम कार्य जिससे कि उसकी इतनी प्रशंसा हुई रक्त इत्यादि पर था इस कार्य के कारण डूमा को अब तक एक उच्च कोटिका प्रयोगिक रसायनज्ञ माना जाता है।

डूमा का सब से उच्च कोटि का प्रयोगिक कार्य जलके भारात्मक विश्लेषण पर हुआ। इसमें डूमा ने स्पष्ट रूप से दिखा दिया कि जल में उद्जन और ओपजन का भार १:८ के अनुपात में होता है। इस कार्यको उस समय की प्रयोगिक चातुरी का मुख्य उदाहरण कह सकते हैं।

कार्बनिक यौगिकों में नोषजन की मात्रा निकालने का मुख्य श्रेय डूमा को ही है। अथवा उसने ही सर्व प्रथम इस कार्य को किया और उसकी रीति अब तक भिन्न भिन्न प्रयोगशालाओं में प्रचलित है। डूमा ने इसी के साथ २ वाष्पीय पदार्थों का वाष्प घनत्व निकालने की एक सुगम और ठीक रीति निकाली। डूमा के समय में तत्वों के मेल के प्रश्न पर वैज्ञानिकों की दृष्टि बड़े जोर से आकर्षित होगई थी। और सब से गूढ़ प्रश्न तो यह था कि किस तत्व का कितना भार दूसरे से मिलता है इस प्रश्न

का उत्तर सब से पहिले बरजेल्स के अनुसन्धानों से मिला।

बरजेल्स के ही समय में डूमा ने जो उस समय नवयुवक ही था, तत्वों के आपेक्षिकघनत्व पर एक महत्व पूर्ण लेख प्रकाशित किया। उसमें उसने प्रत्येक द्रवपदार्थ के वाष्प घनत्व दिये और साथ २ उससे पिछले कार्य की अशुद्धियाँ बतलाईं। उसको यह बात और सुझी कि जब कभी हम लोग अणु की बात चीत करते हैं उसमें सर्वदा भौतिक इकाई की ही भूलक रहती है। ओपजन की एक मात्रा और उद्जन की दो मात्राओं से भाप (जल) की एक मात्रा बन जाती है। इस बात को समझाने के लिये प्रत्येक तत्व का आपेक्षिक घनत्व निकालना आवश्यक था। इस प्रकार नैलिनका आपेक्षिकभार १२५.५ (उ=१) निकला जो बरजेल्स के परमाणु भार (१२३.२) से लग भग मिलता था।

फिर डूमा ने स्फुर और मंचीराम् के आपेक्षिक भार निकालने आरम्भ किये क्योंकि वह पहिले ही इन तत्वों के हरिद और उदिद के आपेक्षिक घनत्व निकाल चुका था। उदाहरणतः स्फुर हरिद का आपेक्षिक घनत्व ४.८७५ (वायु=१) है और यह भी विदित था कि हरिन् के तीन और स्फुर के एक आयतन से स्फुर हरिद के दो आयतन बनते हैं परन्तु हरिन् का आपेक्षिक घनत्व है २.४५। हरिन् के तीन आयतन का भार स्फुर हरिदके दो आयतनोंमें घटा कर स्फुरके दो आयतनोंका रहेगा अर्थात्

$$2 \times 4.875 - 3 \times 2.45 = 2.8$$

अर्थात् २.४ स्फुरके एक आयतनका भार हुआ या यं कहिये कि उद्जन इकाईके अनुसार स्फुरके एक आयतनका भार ३१.६८ हुआ जो बरजेल्सके फल से (३१.३४) से विल्कुल मिलता है। इसी प्रकार गैलम और वंगमके भार निकाले। डूमाका यह कार्य बड़ा ही महत्व पूर्ण है क्योंकि बरजेल्सके बाद डूमा ने ही परमाणु भार निकालने की चेष्टा की। बरजेल्स और डूमा पारदमके परमाणु भार पर एक दूसरे से

विरुद्ध थे परन्तु तब भी बरजेल्स ने डूमाके इस कार्य की बड़ी ही प्रशंसा की।

पिछले भागमें यह बतलाया जा चुका है कि बोलर और लीविंग ने कार्बनिक यौगिकोंका बनना समझानेके लिये बानजावील सिद्धान्त निकाला था परन्तु बरजेल्स ने डूमा पर अधिक जोर नहीं दिया इसके साथ ही साथ १८२८ में डूमा ने एक प्रस्ताव किया कि लग भग सध कार्बनिक यौगिकों का बनना बड़ी सरलतासे समझाया जा सकता है यदि वह सब ज्वलीलिन के युक्त यौगिक मान लिये जायें डूमा ने समझाया कि ज्वलील हरिद और ज्वलक इत्यादि की भांति के यौगिक निम्नलिखित रूप से समझाये जा सकते हैं।

वर्तमान सूत्र	डूमा का सूत्र
ज्वलील हरिद $\text{C}_2 \text{U}_4 \text{H}$	$\text{C}_2 \text{U}_3 + \text{U}_4 \text{H}$
ज्वलील मद्य $\text{C}_2 \text{U}_4 \text{O}$	$\text{C}_2 \text{U}_3 + \text{U}_4 \text{O}$
ज्वलक $(\text{C}_2 \text{U}_4)_2 \text{O}$	$2(\text{C}_2 \text{U}_3) + \text{U}_4 \text{O}$
ज्वलील सिरकेत $\text{C}_2 \text{U}_4 \text{O}$	$2(\text{C}_2 \text{U}_3) + \text{C}_2 \text{U}_4 \text{O}$
ज्वलील गन्ध-काम्ल $\text{C}_2 \text{U}_4 \text{G}$	$\text{C}_2 \text{U}_3 + \text{U}_4 \text{G}$
यद्यपि आजकल हमको यह सूत्र विचित्र दिखाई पड़ेंगे परन्तु वास्तव में इन सब की महायता से ज्वलक और ज्वलीलिनका ज्वलील मद्यके अनाद्रीकरणसे बनना बड़ी सुगमतासे सिद्ध हो जाता है। दूसरे अमोनिया और ज्वलीलिन की समता बरजेल्स और डेवोने पहिले ही जना दी थी। परन्तु डूमाके इस नये सिद्धान्तसे इस बात की सम्भावना और भी बढ़ गई जैसा कि नाँचे लिखे हुये सूत्रों में विदित होगा। अमोनियम हरिद तो $\text{U}_4 + \text{U}_4 \text{H}$	
ज्वलील हरिद $\text{C}_2 \text{U}_4 + \text{U}_4 \text{H}$	
अमोनियम सिरकेत $2(\text{C}_2 \text{U}_3) + \text{C}_2 \text{U}_4 \text{O}$	$+ \text{U}_4 \text{O}$
ज्वलील सिरकेत $2(\text{C}_2 \text{U}_3) + \text{C}_2 \text{U}_4 \text{O}$	$+ \text{U}_4 \text{O}$

डूमा इस समानता पर इतना प्रसन्न और दृढ़ था कि उसने ज्वलीलिन को एक सच्ची त्थारिक वस्तु बताना प्रारम्भ कर दिया और कहा यदि गैस पानीमें घुलजाये तो अवश्य ही इससे लाल लिटमसके साथ नीला रंग उत्पन्न होगा। डूमाके इस प्रस्तावको ज्वलिन सिद्धान्त (Etherin theory) कहते हैं।

हाफमैनका कथन है कि एक बार डूमा फ्रांसके बड़े बड़े रईसोंके उत्सवमें निमंत्रित था। यकायक मोम-वत्तियोंके जलनेसे वहां पर कुछ ऐसी वायु पैदा हो गई जिससे कि उदार रईसोंके कोमल गले घुटने लगे (उस समय बिजली इत्यादि का नाम भी न था।) इसका कारण किसीको भी न सूझा और सब ने इस कारण का पता लगानेके लिये डूमासे अनुरोध किया। बस यहीं से डूमाके सब से महत्वपूर्ण अनुसन्धान आरम्भ हुये जिससे उनका नाम एक दम वैज्ञानिक जगतमें प्रसिद्ध हो गया। डूमा ने बतलाया कि यह धुँआ और कुछ नहीं था बल्कि उदहरिकास्लके बादल मोमवत्तियोंके जलनेसे बन गये थे क्योंकि जिस मोमसे वत्तियें बनी थीं उसका नीरगीकरण (Bleaching) हरिन् द्वारा किया गया था और इसप्रकार कुछ हरिन् मोममें मिलगई जिसके कारण उसके जलने पर उदहरिकास्लके बादल उठ पड़े। इस बात को समझाने पर डूमा की रुचि कार्बनिक यौगिकोंके स्थापन की ओर आकर्षित हुई। सर्वप्रथम उसने सिरकाम्लके उदजन परमाणुओंका हरिन्से स्थापन करना आरम्भ कर दिया। यह तो जानते थे कि स्फुरहरिद द्वारा एक उदजन परमाणु इस अम्लमें से हटाया जा सकता है परन्तु और उदजन परमाणु इस प्रकार नहीं हटाये जा सकते परन्तु डूमा ने हरिन्के प्रभावसे एक एक कर के तीनों उदजन परमाणु हरिन् से स्थापित कर दिये। यह कार्य बड़े ही महत्त्वका हुआ और बरजेल्सके अनुसार उदजन धनात्मक है और हरिन् ऋणात्मक है इसलिये यह एक दूसरे को स्थापित नहीं कर सकते। परन्तु प्रयोगिक प्रमाण के सामने सिद्धान्त की कुछ नहीं चलती इसलिये डूमाके अनुसन्धान को सब ने सराहा। सब से महत्व की बात तो यह है कि

साधारण सिरकाम्ल और त्रिहरिसिरकाम्लमें कुछ अधिक भेद नहीं ।

इस प्रयोगका डूमा पर इतना प्रभाव पड़ा कि वह प्रत्येक कार्बनिक-यौगिकमें स्थापन की चेष्टा करने लगा । सन् १८३६ ई० में डूमासे पहले एक दूसरे फ्रांसीसी नवयुवक लोरे ने जिसका वृत्तान्त आगे दिया जायगा एक दूसरा सिद्धान्त दिया जिसका नाम “केन्द्र सिद्धान्त” है इस सिद्धान्त की लीविग और बरजेल्यूस ने घोर निन्दा की परन्तु डूमा इस विषयमें चुप रहा क्योंकि उसके विचार भी कुछ कुछ लोरे से मिलते थे । १८३९ ई० में उसने अपना दूसरा सिद्धान्त रक्खा जिसे “रूप सिद्धान्त (type theory)” कहते हैं इस सिद्धान्त का मुख्य प्रयोगिक प्रमाण यह था कि त्रिहरिसिरकाम्ल और सिरकाम्ल के चार के साथ स्रवण करने से पृथक् पृथक् दारैन और हरिट्रिन बनती हैं । इस प्रकार उसने दो रूप माने एक रसायनिकरूप और दूसरा यांत्रिक रूप । रसायनिक रूप तो वह है जिसमें एक ही प्रकार की वस्तुएँ हों जैसे हरिट्रिन और नैलिट्रिन इत्यादि और यांत्रिक रूपमें समानता केवल नाम मात्र ही के थी । उदाहरणतः

दारैन	...	...	क _२ उ _२ उ _६
पिपीलिकाम्ल	...	...	क _२ उ _२ ओ _६
हरिट्रिन	...	...	क _२ उ _२ ह _६
कर्वेनहरिद	...	...	क _२ ह _२ ह _६

लीविग के साथ डूमा ने भिन्न भिन्न नीम्बूपेत पर भी अच्छा काय्य किए और १८३० ई० में काष्ठाभिद का अन्वेषण भी इसी व्यक्तिके परिश्रमका फल है ।

वैज्ञानिक कार्योंके अतिरिक्त डूमाका बहुत कुछ अमूल्य समय जनताके उपयोगी कार्योंमें भी व्यतीत हुआ । उसने सबसे आवश्यक और स्मरणीय कार्य फ्रांसमें सार्वजनिक प्रयोगशालायें खोलकर किया था । पाठकोंको याद होगा कि इस कार्यमें सबका अग्रवा लीविग था जिसने डूमासे भी पहिले जर्मनीमें ऐसी प्रयोगशालायें खोली थीं और वास्तवमें खेद की बात है कि फ्रांस जैसे देशमें जहां कि रसायनकाजन्म हुआ १८३२ तक कोई ऐसी प्रयोगशाला नहीं खुली

थी । इन प्रयोगशालाओंमें केवल अन्वेषण ही करने वाले रक्खे जाते थे, और विद्यार्थियों को पढ़ानेमें समय नहीं नष्ट करना पड़ता था ।

डूमा कुछ दिनों तक फ्रांसीसी सरकारका विद्या-मंत्री भी रहा और साथ साथ बहुत कुछ समय जनता के स्वास्थ्य और आरोग्यता सम्बन्धी कार्योंमें लगाता रहा, यहां तक कि १८४८ ई० के पश्चात् इन सब कार्यों का प्रभाव उनके अन्वेषणिक कार्यों पर इतना पड़ा कि वह १८४८ ई० के पश्चात् बहुत ही कम कार्य कर सका ।

डूमाके कार्यों के भलीभांति पहिचानना सरल कार्य नहीं है । उसने अपने परिश्रमसे कार्बनिक रसायन की लीविग और बोलर की भांति बहुत कुछ आगे बढ़ाया । वास्तवमें वह लीविग या बरजेल्यूस से कम न था । इन दोनों से उसका सर्वदा विरोध रहता था क्योंकि इन लोगों के अनुसन्धानों और सिद्धान्तों के डूमा के कार्यों से बड़ा धक्का लगा । डूमा लीविग से अच्छा प्रयोगिक माना जाता है और इसमें कुछ संदेह भी नहीं है । उस समय की लग भग सभी वैज्ञानिकसभायें उसको अपना सदस्य चुनने में गर्व और गौरव समझती थीं । वास्तवमें उसको लीविग और बोलर की भांति कार्बनिक रसायनका निर्माता कहा जा सकता है । १८८४ ई० में ८४ वर्ष की आयु में इस वैज्ञानिक वीर ने कैंज (Cannes) के स्थान पर सर्वदा के लिये इस संसार से गमन किया ।

अग्रस्ते लोरे

(१८०७—१८५३)

लोरेका जन्म १४ नवम्बर सन् १८०७ को लैंप्रेस के पास ला फोली (फ्रांस) में हुआ था । यद्यपि उसके पिता की इच्छा अपने पुत्र को व्यापार कराने की थी क्योंकि वह स्वयं मद्रासका व्यापारी था । परन्तु लोरे की इधर रुचि न देखकर परम और दयालु पिता ने उसको पैरिस की विख्यात खनिज पाठशाला (School of Mines) में भेज दिया । इसके दो वर्ष पश्चात् सेवरीज की ग्रन्थशालामें रसायनज्ञके पद

पर नियुक्त किया गया। परन्तु यहां लोरे के कृचि कब लग सकती थी उसको तो आरम्भ से ही रसायन में अनुसन्धान करने का इच्छा हो चुकी थी। इस कारण वह शीघ्र ही इस पदको त्याग कर पैरिस चला गया और वहीं स्वयं कुछ विद्यार्थियोंको पढ़ाकर रुपया कमाने लगा। परन्तु विद्याके मतवालेको रुपये से क्या प्रयोजन। बस यह भी छोड़कर निशि दिन कार्य करना आरम्भ किया। इसी प्रकार बेचारा लोरे बार बार रुपया कमाता और इस तुच्छ धनसे अपनी प्रयोगशाला खोलकर कार्य करता। वह वास्तवमें एक उदाहरण है एक ऐसे वीरका जो सब दुःखोंके होते हुये भी अपनी मनोकामनाके लिये उसपर दृढ़ रहते हैं। यदि चाहता तो लोरे अपना जीवन इससे कहीं भली प्रकार व्यतीत कर सकता था। परन्तु उसके मनको कभी भी संतोष न होता। १८३७ में उसने “कार्बनिक संयोग” पर एक महत्वपूर्ण लेख लिख कर पैरिस अकैडेमीको प्रदान किया जिस पर उसको अकैडेमी की ओर से डाक्टर की उपाधि मिली। इसके एक वर्ष परचात् अर्थात् १८३८ में लोरे बोरडो विश्वविद्यालयमें रसायन-आचार्यके पद पर नियुक्त किया गया। यह पहिले ही बताया जा चुका है कि फ्रांसमें प्रत्येक बड़ा वैज्ञानिक पैरिसमें कार्य करने या आचार्य होने पर गौरव करता है। लोरे के मस्तिष्कमें भी यह बात सर्वदा जमी रही परन्तु जैसा कि आगे विदित होगा लोरे के विचार डूमा से कभी न मिलते थे और इन दोनोंमें द्वेष रहता था। डूमा फ्रांसमें विद्या मंत्री था और उसने कभी लोरे को पैरिस विश्वविद्यालयमें न आने दिया। अन्त में १८४८ ई० में लोरेको सरकारी टकसालके अध्यक्षके पद पर नियुक्त किया गया और यहां पर उसने अपने मित्र गरहड के साथ कार्बनिक रसायनके लिये बहुतसे कार्य किये।

यद्यपि स्थापन शब्द के साथ अधिकतर डूमा का नाम ही वर्णन किया जाता है परन्तु साथ ही साथ एक दूसरे व्यक्ति का नाम जिम्मे इस क्रिया के आधार पर कार्बनिकसंयोग का दूसरा सिद्धान्त दिया

नहीं भूल जाना चाहिये। लोरे ने १८३४ ई० में नपथलिन पर हरिन्के प्रभावका अध्ययन किया और बतलाया कि दो प्रकार के पदार्थ बनते हैं जो एक दूसरे से भिन्न हैं। लोरे का विचार था कि स्वभाव में यह अन्तर यौगिकों की आणविक रचना पर निर्भर है।

ह
प्रथम प्रकार के क_१ उ_८ — क_{१०} उ_५ ह_२
ह_२
— क_{१०} उ_६ ह_२ अन्त में क_{१०} ह_८

ह_२
द्वितीय प्रकार के क_१ उ_८ — क_१ उ_६ ह_२
ह_२
— क_{१०} उ_५ ह_२ — क_{१०} उ_५ ह_२

इसके पश्चात् उसने ज्वलोल मय इत्यादि के स्थापन पदार्थों की (क_१ उ_८) मूल से उत्पत्ति सिद्ध की। १८३७ ई० में लोरे ने डाक्टर की उपाधि के लिए एक लेख लिखा जिसमें उसने स्थापन क्रिया और उसमें उपयोग पर अपने विचार विशेष रूप में प्रगट किये। नपथलिन समूह (क_१ उ_८) एक केन्द्र है और इसी प्रकार ज्वलीलिन (क_१ उ_५)। इन मुख्य केन्द्रोंमें उदजन, लवणजन, आपजनके योग (combination) से भिन्न भिन्न यौगिक बन सकते हैं इस प्रकार ज्वलीलिन को केन्द्र मान कर और क_५ उ_८ उ_५ (Hyper hydride) अपर उदिद क_५ उ_८ ह_२ (Hyper halide) हरिद क_१ उ_८ ओ_१ (Aldehyde) मगानाई क_१ उ_८ ओ_२ (acid) अम्ल

इन में से प्रत्येक केन्द्र के उदजन परमाणु को हरिन इत्यादि से स्थापित कर सकते हैं। इस के पढ़ने से विदित होता है कि लोरे के इस सिद्धान्त से कार्बनिक रसायन की कितनी उलझन सुलझ गई और स्थापन क्रिया के पूरे महत्व का पता चलता है। यह बात ठीक है कि इस सिद्धान्तको उस समय बहुत कम वैज्ञानिकों ने अपनाया विशेषकर ग्मेलिन (Gmelin) ने अपनी पुस्तक में इसका पूरे तौर से

समर्थन किया और इसी के आधार पर लगभग सब प्रक्रियाएँ समझाई। परन्तु लीविग और वरज़े-ल्यूम ने पूरी निर्णयता से इसकी घोर निन्दा की और इसी कारण इनको कम मान मिला जिस प्रकार लीविग के नाम से वोलेर का नाम अलग करना कठिन है उसी प्रकार लोरेँ से गरहर्ड का नाम नहीं पृथक् किया जा सकता जैसे कि वर्ज़ ने कहा है "The great figure of Gerhardt must not be separated from that of Laurent; their work was collective, their talents complementary, their influence reciprocal, equally potent in the vigour and profundity of their conceptions the one (Laurent) exhibited unparalleled skill in the art of experiment, while the other shone pre-eminent through his method, the extra-ordinary oppositeness of his views, and, above all, the compelling clearness of his exposition."

इस कारण दोनों के कार्यों का वर्णन साथ साथ किया जायगा जैसा कि लीविग और वोलेर का वृत्तान्त देते समय किया गया था।

चार्ल्स फ्रेडरिक गरहर्ड

(१८१६—१८५६)

गरहर्ड का जन्म १८१६ ई० में स्ट्रासबर्ग में हुआ। लोरेँ का भौति वह भी एक व्यापारी का लड़का था, इस कारण उसके पिता ने बचपन में ही उसे लाइपज़िग व्यापारी का कारबार सीखने भेज दिया परन्तु गरहर्ड को तो प्रारम्भ से ही विज्ञान की धुन लगी हुई थी इसलिये उसने अपने पिता से इसके लिये अनुरोध किया परन्तु कोई बस न चल सका। अन्तको १९ वर्ष की आयु में घर छोड़ भागा और सेना में भर्ती हो गया परन्तु इस जीवन से दुःखित होकर अपने जर्मन मित्र लीविग से कुछ आर्थिक सहायता पाकर सेना को छोड़ दिया और गीसेन में १८ साल

लीविग के पास कार्यरत रहता रहा। तत्पश्चात् १८४१ ई० में मोन्टपेलियर विश्वविद्यालय में रसायनाध्यापक नियुक्त हुआ। परन्तु गरहर्ड का अनाद्विद का अन्वेषण और उसको पुस्तक (*Traité de chimie organique.*) का ऐसा प्रभाव पड़ा कि १८५५ ई० में वह स्ट्रासबर्ग विश्वविद्यालय में रसायन का मुख्य अध्यापक नियुक्त किया गया। परन्तु कहाँ! बेचारे गरहर्ड के लिये तो मृत्यु के यम दूत न्योता दे चुके थे। १ वर्ष इस पद को शोभा देकर १८५६ ई० में गरहर्ड का स्वर्गवास हुआ। अणु, परमाणु और तुल्यांकों पर सबसे अधिक कार्य कार्बनिक रसायन के ही विस्तार से हुआ क्योंकि अकार्बनिक क्षेत्र में तो लगभग प्रत्येक यौगिक वरज़ेल्सूम के सिद्धान्त के अनुसार प्रदर्शित किया जा सकता था परन्तु कार्बनिक यौगिकों में अधिक उलझन पड़ती थी। सब से बड़ी समस्या तो परमाणु-भार की थी कि किस प्रकार इनकी संख्या नियुक्त कर दी जाय क्योंकि यदि कर्वन के लिये चाहे तो १२ या ६ या तीन कुछ ही मान लिया जाय कोई बात नहीं परन्तु प्रति दिन इतने कार्बनिक यौगिक तैय्यार होने लगे कि इन सबके समझाने के लिये किसी मुख्य आदर्श (Standard) के कायम करनेकी आवश्यकता दिन दिन बढ़ने ही लगी और सबसे पहिले इस बात की ओर लोरेँ ने विचार प्रगट किये, परन्तु कौन मानने वाला था।

सन् १८४० ई० में रसायनिक नामकरण (Notation) बड़ी गड़बड़ दशामें थे और उस समय तक कार्बनिक यौगिक प्राकृति प्राप्तिस्थानों के अनुसार भिन्न भिन्न भागों में रखे जाते थे। पाठकों ने देखा होगा कि सिरकिक अनाद्विद के सूत्रसे सिरकाम्ल को दिखाया जाता था अर्थात् $\text{C}_8\text{H}_8\text{O}_4$ और उबलील मय तथा ज्वलक $\text{C}_8\text{H}_8\text{O}_4$ और $\text{C}_8\text{H}_8\text{O}_4$ और $\text{C}_8\text{H}_8\text{O}_4$ से जनाया जाता था। इसी प्रकार उस समयमें तुल्यांकों (Equivalent) का किसी को ध्यान भी न था। यदि बहु-क्षारिक (Polybasic) स्वभाव जाना होता था

तो सूत्र को उसी संख्या से गुणा कर देते थे जैसे लीबिग ने इम्लिकाम्ल का द्विआयतन स्वभाव दिखाने के लिये उसके सूत्र का दुगुना कर दिया था। इसी प्रकार बहुतसे कार्बनिक यौगिकों के सूत्रोंको चारसे गुणा किया जाता था और इसको “चार आयतन सिद्धान्त” कहा जाता था क्योंकि प्रत्येक वस्तुका सूत्र भार वायव्य अवस्था में उतना ही आयतन घेरता है जितना कि उद्जन की चार संख्यायें (units)। इसीके वाष्प घनत्व द्वारा बहुत से यौगिकों के सूत्र इसी आधार पर लिखे गए थे परन्तु कुछ ऐसे यौगिकों के लिये जो इतने ऊँचे तापक्रम पर विरलपित हो जाते हैं उलभन पड़ती थी जैसे स्फुर पंचहरिद, अमोनियम हरिद इत्यादि। परन्तु कुछ ऐसे यौगिक थे जिनके लिये दो आयतन सिद्धान्त प्रचलित था जैसे उद्जन गंधिद, कर्बन द्विआयतन इत्यादि। इन बातों से उस समय की गड़बड़ का पता चलता है। इस प्रकार प्रत्येक अविष्कारक की इच्छा पर निर्भर था कि चाहें वह कर्बन का परमाणु भार ६ ले या १२ या २४ या जो मन चाहें।

वरजैल्यूम अपने फारमूलों पर एक लकीर खींच देता था जिसका अर्थ द्विपरमाणु था परन्तु इसमें भी बहुत सी सन्देह जनक बातें उत्पन्न हुईं।

गरहर्ड ने इन सब फारमूलों को एक मुख्य आधार पर रखना चाहा। पहिले तो उसने चार आयतन सिद्धान्त को अपनाया परन्तु मिरकाम्ल के समझने में कुछ उलभन पड़ो परन्तु इनके कुछ ही पश्चान लोरे और गरहर्ड ने सब कार्बनिक यौगिकों के सूत्रों को दो से भाग देकर एक बड़े ही महत्व की बात विदित की कि प्रत्येक का भजनफल पूरी संख्या है। इस कारण उन्होंने द्विआयतन सिद्धान्त को अधिक ठीक समझा इस प्रकार परमाणु भार निकालने से बहुत सी संख्याएँ अवेगात्रा सिद्धान्त के आधार पर निकाली हुई संख्याओं से मिल गईं। यद्यपि उसी समय रेनो ने यौगिकों के आपेक्षिक ताप पर कुछ प्रयोगिक फल प्रकाशित

किये जो गरहर्ड और लोरे के काय को और हड़ कर देते परन्तु बेचारे दोनों कार्बनिक रसायनज्ञ होनेके कारण इस का अधिक लाभ न उठा सके। इससे पता चलता है कि यह दोनों व्यक्ति अणु परमाणु और तुल्यांक का ठीक ठीक महत्व और अर्थ जानने के कितने समीप पहुँच चुके थे। जैसा कि उन्होंने अपने १८४२ ई० के लेख में लिखा है “परमाणु, अणु, तुल्यांक पर्याय शब्द है।”

तुल्यांक शब्द के नाम से ही उन समय डर लगता था परन्तु रिकटर ने इसी शब्द का प्रयोग वर्तमान विचारों के अनुसार करने की चेष्टा की और उसमें काफी सफलता भी प्राप्त हुई। रिकटर के अनुसार तुल्यांक की परिभाषा निम्नलिखित शब्दों में दी गई है “तुल्यांक किसी तत्व का वह भार है जो किसी रसायनिक प्रक्रिया में दूसरे तत्व को ठीक ठीक हटा सके।” बोलेस्टनने इसकी परिभाषा दूसरे शब्दों में दी—“तत्व का साधारण में साधारण भार जो रसायनिक प्रक्रियाओं में भाग ले।” इस प्रकार इन दोनों परिभाषाओं के अनुसार बहुत से वैज्ञानिक सब अम्लों और क्षारों को एक-दूसरे या एकात्मिक समझने लगे परन्तु लीबिग और ग्रेहम के कारण से इस भ्रम का पता लगा। इस समय परमाणु और तुल्यांक के विचार में बड़ी गड़बड़ हुई और कुछ लोग तो इन दोनों में कुछ भी अन्तर न समझते थे परन्तु लोरे ने १८४६ ई० में परमाणु और तुल्यांक के अन्तर पर महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित किया। जिसमें उन्होंने दिखाया कि किसी वस्तु का तुल्यांक विशेष रसायनिक क्रिया पर निर्भर है और आणविक परिमाण (Magnitude) का कारण वाष्प घनत्व है। इससे यह बात सिद्ध हुई कि उद्जन, आपजन इत्यादि गैसों के अणुओं में दो परमाणु होने चाहियें। यद्यपि इन विचारोंकी वर्तमान विचारों से तुलना की जाये तो उनमें कोई भेद दृष्टिगोचर नहीं होता परन्तु इन सुन्दर विचारों तक का उस समय किसी पर भी प्रभाव न पड़ा।

द्विपरमाणविक गैसों के विचार को गरहर्ड ने

बहुत पसन्द किया क्योंकि इसके अनुसार स्थापन सम्झाना बहुत सरल हो जाता था ।

उ. + ह. उह + उ

इस प्रकार उसने रसायनिक प्रक्रिया का एक बड़ा अच्छा सिद्धान्त दिया — “जब दो वस्तुयें मिलती हैं तो विशेषकर एक साधारण अकार्बनिक वस्तु बनती है और शेष दोनों मूल मिल जाने पर नया यौगिक बन जाता है ।”

क. उ. + उओ नो ओ.

उ, ओ. क. उ, — नो ओ.

शेष-सिद्धान्त (Theory of residue) का मुख्य आधार ऊपर दिये हुये समीकरण से ज्ञात होना है अर्थात् मूल और शेष में गरहड के अनुसार भेद है यद्यपि बहुत से उसमें कोई अन्तर न मानते थे। परन्तु गरहड इसके विल्कुल विरुद्ध था उसका कथन था कि मूल के समान शेष में कोई विद्युत संबन्धी स्वभाव नहीं है और न व किसी अणु में स्वतंत्र रह सकते हैं। साथ ही साथ उनका प्रयोग-शाला में बनाना भी संभव नहीं है। इन सब विचारों के पढ़ने से विदित होता है कि इन युगल मूर्तियों ने हमारे कार्बनिक रसायन के विचारों को कितना आगे बढ़ा दिया और सच प्रकिये तो उनके और वर्तमान विचारों में कोई विशेष अन्तर नहीं है।

गरहड ने अम्लों की चारिक दशा पर भी काफी अच्छे विचार प्रगट किये। उसका कथन था कि केवल अम्लिक लवण बनाना ही किमी अम्ल को द्विचार्गिक सिद्ध नहीं कर सकता क्योंकि संभव है कि शून्य लवण अम्ल के अणु को चिपटा ले। बल्कि यदि कोई अम्ल अम्लिक सम्मेल या अमिद बना सके तो वह अवश्य ही बहुचार्गिक होगा।

कार्बनिक योगिकों को भिन्न भिन्न भागों में बांटने का गरहड के स्वाभाविक शौक था। इस कारण

उसने तीन प्रकारके नाम बनाये समश्रेणिक (Homologous), भिन्न श्रेणिक (Heterologous) और समश्रेणिक (isologous), सः श्रेणी का विचार तो शीले (Scheele) ने ही दिया था परन्तु डूमाने भी इस का प्रयोग किया था। समश्रेणिक योगिकों से गरहड का अभिप्राय वानजाविकाम्ल और सिरकाम्ल जैसे पदार्थों से था जिनमें क. उ. के अतिरिक्त और भी भेद हों और भिन्न श्रेणीमें ऐसे पदार्थ थे जैसे ज्वलील मद्य और सिरकाम्ल जिनमें सब भेद हों परन्तु उत्पत्ति मूलक (Genetic) विचार से मिलते जुलते हैं।

पाठकोंको विलयमसन और वूर्जके कार्य पढ़नेसे पता लगेगा कि किम प्रकार अमिन और ज्वलकके अन्वेषणसे गरहड और लॉरेके सिद्धान्त की पुष्टि हुई। इसका पूरा वृत्तान्त आगे दिया जायगा। अम्ल अनाद्रिदोके अन्वेषणका श्रेय भी गरहड को ही है।

इन दोनों व्यक्तियोंके कार्य को पढ़ने से पाठकों को स्वयं ही पता लग जायगा कि वर्तमान कार्बनिक रसायन इन दोनों की कितनी ऋणी है पर उस समय इन विचारों को सुनकर सरहाना तो दूर उल्टी हँसी उड़ाई जाती थी। एक समय जब कि गरहड एक बड़ा लिकाफा लिये जा रहा था तो एक सहकारीने पूछा, इसमें क्या है। गरहड ने हंस कर उत्तर दिया “भविष्य रसायन” और वास्तवमें यह बात ठीक हुई। उस लिकाफेमें इस सिद्धान्तके ऊपर लेख था जो कि ऊपर दिया गया है। इन दोनों का जीवन अपने विचारों का फैलाने और उन्हें उच्च स्थान दिलानेमें ही व्यतीत हो गया। वास्तवमें उस समयके पाखंडी विचारोंसे जो जो बाधाएं इनके कार्योंमें पड़ीं उनका अनुमान पाठक स्वयं ही लगा सकते हैं पर इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि सत्य की सर्वदा जीत होती है।

कार्बनिक रसायन का विस्तार (भाग ३)

द्वितीय-रूप सिद्धान्त में वर्तमान “संयोग शक्ति सिद्धान्त” में परिवर्तन—विलयमसन, वृज, कैंकलैंड, कोन्वे. केंकगुले इत्यादि।

पिछले कुछ दृष्टों में डूमा का वृत्तान्त देते समय उस के रूप सिद्धान्त का भी वर्णन किया गया है। परन्तु डूमा का यह सिद्धान्त अधिक समय तक दृढ़ न रह सका और इसके पश्चात् गरहर्ड इत्यादि ने भिन्न भिन्न रूपों में कार्बनिक यौगिकों की उत्पत्ति दर्शाई। गरहर्ड के शेष सिद्धान्त के विषय में पहिले ही कहा जा चुका है। परन्तु कुछ दिनों पश्चात् उसका अपने विचारों में परिवर्तन करने की आवश्यकता पड़ने लगी और इस दूसरे सिद्धान्त का नाम गरहर्ड ने द्वितीय-रूप सिद्धान्त रक्खा। पाठकों का भला प्रकार विदित है कि गरहर्ड और लोरे के अनुसन्धान और सिद्धान्त वरजेल्यूम के युगल सिद्धान्त (Dualistic Theory) के निकटवर्ती विरुद्ध थे। साथ ही साथ उस समय के अनुसन्धानों से वरजेल्यूम के विचारों पर लोगों का संदेह होने लगा। उदाहरणतः सिरकास्ल के उद्जन परमाणुओं का हरिन से स्थापन अर्थान् एरहरि, द्विहरि और त्रिहरिसिरकास्लकी उत्पत्ति। १८४८ ई० में वरजेल्यूम की मृत्यु के पश्चात् दो तीन ऐसे महत्वपूर्ण अनुसन्धान हुए जिनसे कि गरहर्ड और लोरे के विचारों का बहुत कुछ सहायता मिली जैसे विलयमसन का ज्वलक पर, वृज और हाफमैन का अमिनो पर। विलयमसन का मुख्य कार्य ज्वलक पर ही हुआ, और कोई विशेष कार्य वर्णन योग्य नहीं है इस लिये उसका कार्य रूप सिद्धान्त के साथ वर्णन करके उसका जीवनी के विषय में अलग कुछ कहा जायगा।

विलयमसन ने १८५० ई० में ज्वलक पर अपना कार्य आरम्भ किया और इससे ऐसे महत्वपूर्ण फल मिले जिनके लिये गरहर्ड वर्षों से खाज कर रहा था। भाग्यवश उसी समय हाफमैन ने अमोनिया पर मशील हरिदों के प्रभावसे स्थापित अमोनिया तैयार किये थे, इसी विचार का तत्तु हेतु विलयमसन ने मशीलनैलिटो के प्रभावसे पांशुज मयेत से स्थापित मयो के बनाने की आशा की, परन्तु स्थापित मय के वजाय उसको ज्वलक प्राप्त हुई। परन्तु इस आश्चर्यजनक बात के महत्व को जानने में विलयमसन को देर न लगी और तुरन्त जान लिया कि इस प्रयोगके आधार पर रसायन की बड़ी बड़ी उलझने समझानों सहल हो जायेगी। इस समय बहुत से रसायनज्ञ मय को (क. उ. ओ., उ. ओ.) की भांति, मयेत को (१. उ. ओ., पां. ओ.) और ज्वलक को (क. उ. ओ.) की भांति (क=६; ओ=८) के आधार पर लिखते थे। पर गरहर्ड और लोरे इन यौगिकों को सर्वदा जल के स्थापित पदार्थों की भांति लिखते पर जोर देते थे और वास्तव में यह था भी ठीक, जैसे:

उ. ओ., क. उ. | ओ., क. उ. | ओ., क. उ. |
उ. | उ. | ओ., पां. | ओ., क. उ. | ओ.

विलयमसन को तुरन्त ही अपने प्रयोग का महत्व ऊपर लिखे कार्मूनों की जांच करने में जान पड़ा और निम्न लिखित रूप में उसने मशील नैलिट और मयेत से ज्वलक की उत्पत्ति इस प्रकार प्रदर्शित की:—

क. उ.) ओ+ क. उ. नै=पां नै क. उ.) ओ
पां) क. उ.)

परन्तु किसी ने कहा है “सीधी उँगुलियों से घों नहीं निकलता” और वैसाही हुआ। पुराने सिद्धान्त के अनुयायियों ने विलयमसन के प्रयोग को निम्न लिखित रूपों में समझाने की चेष्टा की और कुछ थोड़े दिनों तक फिर शान्ति सी पड़ गयी। उनका कथन था कि पांशुज मयेत पहिले ज्वलक और पंशुज

ओषिद में विभाजित हो जाता है और ओषिद फिर नैलिद के प्रभाव से ज्वलक का दूसरा अणु उत्पन्न करती है:-

१. क, उ, ओ, पां ओ=पां ओ + क, उ, ओ
२. क, उ, नै, + पां ओ=पां नै + क, उ, ओ.

परंतु आप जानते हैं कि जब लड़ाई छिड़ जाती है तो बिना अन्त हुये नहीं रहती। कोई न कोई विजयी होता ही है परंतु अन्त भी सीधे ही से नहीं होता। इसी प्रकार विलयमसन ने जो कि इस प्रयोग के पश्चात् गरहर्ड के मतका अनुयायी हो गया था इस बात को जांचने की एक और रीति निकाली। यदि विरुद्ध मत वालों का कथन ठीक है तो उनके अनुसार पांशुज मणेतसे मघील नैलिदके प्रभाव के बजाय दारील नैलिद के प्रभाव से मघील और दारील ज्वलक बराबर संख्या में बननी चाहिये और यदि गरहर्ड और लोरेंके विचार ठीक हैं तो मिश्रित ज्वलक बननी चाहिए। प्रयोग करने पर गरहर्ड और लोरेंकी ही जय हुई।

क, उ, } ओ + क उ, नै=पां नै + } ओ
पां } क, उ, }

यद्यपि गरहर्ड और लोरें ने सहस्रों यौगिकों का गूढ़ अध्ययन किया था परंतु उनके सिद्धान्तोंका वैज्ञानिकों पर अधिक प्रभाव न पड़ा क्योंकि सर्वदा कोई न कोई दूसरा मत देकर वह लोग उनके विचारों को अपनाने में आनाकानी करते थे परन्तु विलयमसन के इस अनुसन्धान के पश्चात् किसी को चूँ करने का भी अवसर न रह सका क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाण के सामने केवल बातों से काम नहीं चल सकता। इसके पश्चात् उसने और ज्वलकों के साथ भी ऐसे ही प्रयोग किये और स्पष्ट रूप से दिखा दिया कि केवल ज्वलक ही नहीं बल्कि मद्य, अम्ल, सम्मेल इत्यादि सब यौगिकों का रूप जल के ही समान है। इन विचारों का केवल कार्बनिक रसायन में ही नहीं बल्कि अकार्बनिक क्षेत्र में भी उसने प्रयोग किया और बहुत से बहुवृत्तारिक अम्लों को भी जल के समान दर्शाया

जैसे गन्धकाम्ल, स्फुरिकाम्ल इत्यादि

ग ओ, स्फु ओ } ओ,
उ, } ओ,
उ, }

१८५४ में बरथेलो ने यह दिखाया कि मद्य और मधुरिन में वही संबंध है जो नोषिकाम्ल और स्फुरिकाम्ल में और इसी विचार के आधार पर बुर्ज ने मधुओल का अन्वेषण किया।

विलयमसन के इस कार्य का गरहर्ड पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा और तुरन्त ही उसने भिन्न भिन्न कार्बनिक सम्मेलों पर अम्लिक हरिदों का प्रभाव विदित किया अर्थात् उनके मिलने से अनाद्रिद प्राप्त किये।

गरहर्ड का यह कार्य उसके प्रयोगिक कार्यों में सबसे उत्तम माना जाता है। अब उसने जल और अमो-निया रूपों के अतिरिक्त उद्जन (उ उ) और उद्हरि-काम्ल (उ ह) भी मान लिये जिनसे उद्कर्वन, मघील तथा अम्लिक हरिद और बहुतसे कार्बनिक सम्मेलों की उत्पत्ति भले प्रकार समझाई जा सकी।

उ } { उ क, उ, } क, उ, } क, उ, ओ
उ } { उ क, उ, } ह } ह }

उद्जन नवनीतेन (उद्कर्वन) मथीजहरिद मिश्रिक हरिद

इस प्रकार द्वितीय रूप सिद्धान्तकी उत्पत्ति हुई। पाठक देखेंगे कि यह सिद्धान्त और सिद्धान्तों से कहीं गूढ़ और ठीक और लगभग संयोग शक्ति सिद्धान्त ही है क्योंकि इसमें और संयोग शक्ति सिद्धान्त में कोई मुख्य भेद नहीं। यद्यपि लीविगने गरहर्ड के सिद्धान्तों की घोर निन्दा की थी परन्तु इस सिद्धान्त को लीविग ने भी सराहा और गरहर्ड की प्रशंसाकी और बहुत से रसायनज्ञ इस सिद्धान्त को मानने लगे क्योंकि इसकी सहायता से लगभग सभी कार्बनिक यौगिकों की उत्पत्ति पहिले वर्णन किये हुये रूपों के आधार पर समझाई जा सकती थी। गरहर्ड ने इस सिद्धान्त का अपनी पुस्तक, कार्बनिक रसायन में

(*Traite de Chemie Organique*) समर्थन किया पर तब भी बहुत सूक्ष्म रूप में ही इनका वर्णन किया, इस डर से कि कहीं उसकी पुस्तक को लोग पसंद न करे और उसकी निन्दा हो। द्वितीय रूप सिद्धान्त के इतिहास को पढ़ने से पता लग जायेगा कि विलियमसन ने कितने महत्व का कार्य केवल अपने एक ही अनुसन्धान से किया क्योंकि उसी के प्रयोग के आधार पर सब कार्बनिक यौगिकों की उत्पत्ति समझाने वाला सिद्धान्त बना और इस प्रकार कार्बनिक रसायन का एक सब से बड़ा रहस्य सुलझाया गया।

विलियमसन का जन्म १ मई १८२४ को वैण्डस्वर्थ में हुआ। उसकी प्रारम्भिक शिक्षा अधिकतर निजी रूप में हुई। इसके पश्चात् विलियमसन हाइडेलबुर्ग विश्वविद्यालय में वैद्यक पढ़ने के लिये भेजा गया परन्तु यहाँ पर ग्मेलिन के व्याख्यानों का उस पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि अस्वस्थ होने पर भी प्रयोगशाला के कार्य में जुट गया और अन्त में अपने पिता की आज्ञा भी वैद्य होने के बजाय रसायनज्ञ होने के पक्ष में प्राप्त कर ली।

सन् १८४४ ई० में विलियमसन को जगतगुरु लीविग की प्रयोगशाला में भर्ती होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। आरम्भ में तो उसको लीविग के व्याख्यान कुछ अधिक लाभदायक न प्रतीत हुये क्योंकि वह सर्वदा प्रारम्भिक और सरल बातों से अपने व्याख्यानों में रसायनिक समस्याएँ समझाया करता था परन्तु बाद में विलियमसन के ऊपर उनका बहुत प्रभाव पड़ा जैसा कि उसके ब्रिटिश एसोसिएशन के सभापति के भाषण से प्रगट है। गीस्सेन की प्रयोगशाला में लीविग के साथ उसने बड़े परिश्रम के साथ कार्य किया और कई महत्वपूर्ण लेख भी प्रकाशित किये। १८४५ ई० में डाक्टर की उपाधि पाकर विलियमसनने रसायनिक विषयों को छोड़कर प्रो० कान्टे के पास गणित इत्यादि सीखने के लिये पैरिस को प्रस्थान किया। दैवयोग से उसी समय जगत विख्यात् टामस प्रैहम जो उस

समय लन्दन के यूनिवर्सिटी कालेज का रसायन-चार्य था पैरिस आया और विलियमसन के कार्यसे प्रसन्न होकर उसने अपने कालेजमें प्रयोगिक रसायन-चार्यका पद स्वीकार करने का प्रस्ताव किया जो उसी समय खाली हुआ था और ईश्वरकी कृपासे विलियमसन १८४९में यूनिवर्सिटी कालेज में रसायन-चार्यके पद पर नियुक्त हुआ और सन् १८८८ तक यहाँ रहा। १८५५ ई० में प्रैहमको टकसालका उच्चपद मिलजाने पर विलियमसन कुल रसायन विभाग का अध्यक्ष बना दिया गया। नये पद को प्रहण करके विलियमसन और भी परिश्रम और धैर्य से कार्य करने लगा और इसी वर्ष उसके कार्यके उपलक्षमें रायल सोसाइटीने उसको सदस्य चुन कर सम्मानित किया। परन्तु इसके पश्चात् विलियमसन कोई मुख्य कार्य नहीं कर सका क्योंकि प्रथम तो उसका स्वास्थ्य भी बहुत कुछ बिगड़ गया था, दूसरे और सरकारी इत्यादि कार्यों से उसे कम अवकाश मिलता था क्योंकि वह उस समय सब अंगरेजों सोसायटियों का सदस्य था, साथ ही साथ लन्दन विश्वविद्यालय के सम्बंध में भी उसे बहुत कुछ समय लगाना पड़ता था। १८८८ ई० में विलियमसन ने विश्व-विद्यालय से अपने पद को त्याग दिया, जिस पर उसके बाद सर विलियम रैमजे को नियुक्त किया गया। विलियमसन साधारणतः तो बहुत दयालु था परन्तु कुछ कुछ हड़मत प्रिय भी था जैसा कि कई बार देखा गया क्योंकि वह सर्वदा अपने से छोटे अध्यापकों को काफी सख्ती से रखता था। सन् १९०४ ई० में विलियमसन की लगभग ८० वर्ष की आयु भोग कर मृत्यु हुई।

चार्ल्स अडोल्फ वूर्ज़ (१८१७-१८९४)

रूप सिद्धान्त को दूसरी बड़ी सहायता वूर्ज़ के अनुसन्धानों से हुई। यद्यपि वह स्वयं सैद्धान्तिक बातों में अधिक भाग न लेता था परन्तु उसके कार्य कई सिद्धान्तों को और विशेषकर कार्बनिक यौगिकों की उत्पत्ति समझाने में अति लाभदायक हुये।

वूर्ज का जन्म स्ट्रामवर्ग के पास वोल्फशाइममें १८१७ में हुआ। वूर्ज की वात्स्यावस्था के विषय में कुछ अधिक विदित नहीं है। आरम्भ में वूर्ज गरहर्ड का सहपाठी रहा और उसके साथ ही लीविंग की प्रयोगशाला के चला गया जहाँ पर उसने बहुत कुछ प्रशंसनीय कार्य किया। लीविंग की प्रयोगशाला छोड़ने पर वूर्ज डूमा का सहकारी नियुक्त हुआ। १८५३ ई० में डूमा के छोड़ जाने पर वैद्यक कालेज में (Ecole de Medecine) में रसायनाचार्य के पद पर रखा गया। और अन्त में १८७५ में सारवोन विश्वविद्यालय में प्रधान रसायनाचार्य के पद पर नियुक्त हुआ।

वूर्ज का सबसे उच्च कोटि का काम जिससे उसका नाम सर्वदा वैज्ञानिक जगत में जीवित रहेगा अमिनो पर हुआ। यद्यपि अमिनो की उत्पत्ति के विषय में लीविंगने सम्भावना प्रगट की थी परन्तु सन् १८४८ में वूर्ज ने उनको स्पष्ट रूप में निकाला। वूर्ज की अमिनो को बनाने की पहिली रीति मशील सम श्यामेत के उदलेपण से था। यद्यपि साधारणतः तो कोई विशेष महत्त्व इस कार्य का नहीं विदित होता परन्तु यदि जरा ध्यान दिया जाय तो पाठकों को इसका महत्त्व स्वयं ही विदित हो जायगा। गरहर्ड के रूप सिद्धान्त के अनुसार जिसमें कुछ यौगिक अमोनिया रूप के माने गये हैं अमिनो की उत्पत्ति से ठीक सिद्ध हुये क्योकि अमोनिया के एक उद्भूत परमाणु को किसी भी मशील मूल से स्थापित करने से अमिन बनना चाहिये और दूसरे इन अमिनो के साधारण गुण अमोनिया के समान होने चाहिये। वास्तव में वूर्ज के बनाये हुये नये यौगिकों में लग भग अमोनिया के सब गुण पाये जाते थे अर्थात् एक प्रकार से अमिन केवल अमोनिया के मशील स्थापित यौगिक होने का प्रथम, प्रत्यक्ष और प्रयोगिक प्रमाण वूर्ज से हो मिला। निम्नलिखित समीकरणों से इस कार्य का महत्त्व और भी भली प्रकार प्रगट हो जायगा।

नो उ _२ } उ }	नो उ _२ } क उ _२ }	नो उ _२ } क उ _२ }
अमोनिया	दारीलअमिन	ज्वलीलअमिन

यदि अमोनिया का एक उद्भूत परमाणु मशील मूल से स्थापित किया जा सकता है तो कोई सन्देह नहीं कि शेष दोनों भी इसी प्रकार स्थापित किये जा सकें और वास्तव में इसकी सम्भावना हाफमैन के कार्य से सिद्ध हुई जिसने वन्द मुख की नलियों में अमोनिया पर मशील हरिदों के प्रभाव से प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय अमिन बनाए। यदि मशील मूल को म से दर्शाया जाय तो तीनों अमिनो के निम्न लिखित सूत्र होंगे:—

• म—नो उ_२, (म) = नो उ, (म) ≡ नो

शायद गरहर्ड के सिद्धान्त का दूसरा सबसे बड़ा प्रयोगिक प्रमाण अमिनो का अन्वेषण है क्योकि इससे स्पष्ट विदित होता है कि किस प्रकार अमोनिया के उद्भूत परमाणुओं को स्थापित करके अमिन इत्यादि बनते हैं जिनक गुण लगभग अमोनिया से मिलते हैं जैसे तीनों अमिन उदाहरणार्थ या किसी भी अम्ल से अमोनियम हरिद इत्यादि की ही तरह योगक बनाते हैं:—

नो उ_२ + उह = नो उ_२ ह [नो उ_२ उह] अमोनियम हरिद
(म) नो उ_२ + उह = (म) नो उ ह [(म) नो उ_२ उह] मशील अमिन उद् हरिद
(म)_२ नो उ + उह (म)_२ नो उ ह [(म)_२ नो उ उह] द्विमशील अमिन उद् हरिद
(म)_३ नो + उह = (म)_३ नो उह [(म)_३ नो उह] त्रिमशील अमिन उद् हरिद

वूर्ज का दूसरा बड़ा कार्य उद्भूतों के संश्लेषण पर हुआ। यद्यपि ध्यान देकर देखा जाय तो वूर्ज का लगभग सब कार्य कार्वनिक रसायन के सिद्धान्तक ज्ञान को बढ़ाने में अति ही लाभदायक हुआ। वूर्ज की मध्यमजिक उद्भूतों को बनाने की विधि मशील हरिदों का सैधकम् के साथ लिप्त करने की थी। उदाहरण के लिये ज्वलेन का

संश्लेषण नीचे दिया जाता है।

क उ $\overline{हसैसैह}$ क उ. = $२सैह + क. उ.$

यदि देखा जाये तो इन संश्लेषणों से केवल गरहड़ के सिद्धान्त का ही प्रमाण नहीं मिलता बल्कि सब से उत्तम और सुगम प्रमाण बेक्यूले के कर्बन परमाणु बन्धन नियम का मिलता है क्योंकि इस प्रयोग से स्पष्ट ज्ञात है कि बिना एक दूसरे कर्बन परमाणु का मिला केवल २ही नहीं वृज्ज ने सुरमित उदकवनों को भी इंगी रीति से बनाने की चेष्टा की और उसमे उसे सफलता प्राप्त हुई। यदि दोनों अणु मध्यमजिक हरिदों के बजाय एक मध्यमजिक और दूसरा सुरमित हरिद का अणु लेकर सैन्धकम् के साथ लिप्त किया जाय तो सुरमित उदकवनों के समश्रेणीक बनेंगे।

क उ. $\overline{ह+सैसै+ह}$ क उ. $२सैह +$

क. उ. क उ,
टोल्वीन

भिन्न भिन्न प्रकार के हरिद लेने से लगभग सब उदकवनों इस प्रकार संश्लेषित किये जा सकते हैं।

इन मुख्य कार्यो के अतिरिक्त वृज्ज ने धातु उदको पर भी अच्छे कार्य भिये जिममे उनके गठन समझने मे बड़ी सहायता मिली। इन के अतिरिक्त भ्रुतकार्बनिक यौगिकों तथा उदीय अम्लों पर भी वृज्ज का कार्य वर्णन योग्य है। इतने कार्य करने पर वृज्ज ने अद्भुत परिश्रम के साथ साहित्यिक कार्य किया। उसकी बहुत सी पुस्तकों में रसायन का इतिहास (*Historical outlines Chemistry*) विशेष वर्णन योग्य है। यद्यपि जन्मसे वृज्ज जर्मन था परन्तु उसकी अधिकतर शिक्षा फ्रांस में ही हुई और फ्रांस में ही प्रोफेसर नियत हुआ। इस कारण उसका स्वभाव फ्रांसीसियों से ही अधिक मिलता था और यहां तक कि फ्रांस को ही अपना देश मानता था। फ्रांसीसीभाषा में रसायनका इतिहास लिखते हुए उसने उसे इस प्रकार आरम्भ किया था—“रसायन फ्रांसीसी विद्या है और

उसे अमर लैवासिये ने स्थापित किया था” वृज्ज के ऐसा लिखने से बहुत से देशभिमानी वैज्ञानिक उससे बहुत द्रोह रखने लगे थे। फ्रांस के रसायनज्ञों में वृज्ज अपनी दयलुता और साधारण स्वभाव के लिये प्रसिद्ध है। यह गौरव की बात है कि सर्वोच्च भौतिक रसायनज्ञ प्रो० वाण्टहाफ और प्रसिद्ध रसायनज्ञ ला बेल ने आधुनिक शिक्षा वृज्ज की ही अध्यक्षाता में पाई थी और वाण्ट हाफ तथा ला बेल का प्रसिद्ध अवकाश समरूपता सिद्धान्त इसी समय निकला था। स० १८५४ ई० में वृज्ज की मृत्यु हुई।

संयोग शक्ति सिद्धान्त का आरम्भ

जिम समय गरहड़, लॉरे और वृज्ज इत्यादि रूप सिद्धान्त की नींव डाल रहे थे उसी समय दो नव-युवक कोल्बे और प्रैकलैंड एक दूसरे नये सिद्धान्त की सामग्री तैयार कर रहे थे। यद्यपि गरहड़ के रूप सिद्धान्त से बहुत सी बातों के ज्ञान में वृद्धि हो चुकी थी परन्तु उससे मूलों की दशा का कुछ पता न चलता था। इस नये सिद्धान्त का दर्शने वाला मुख्य व्यक्ति बेक्यूले था जिमका नाम कार्बनिक रसायन के किसी भी विद्यार्थी की आंखों से न बचा होगा। इसके साथ ही साथ प्रैकलैंड इत्यादि के अनुमन्धानों से इस सिद्धान्त को विशेष सहायता मिली। इस सिद्धान्त का वर्णन करने के पश्चात् इन तीनों पुरुषों की जीवनों का कुछ वृत्तान्त दिया जायगा। संयोग शक्ति सिद्धान्त के महत्व को पूर्ण तौर से समझने के लिये कुछ पहिले विचारों का वर्णन करना भी अति आवश्यक है यद्यपि वह पिछले पृष्ठों में भली भाँति समझाये जा चुके हैं।

रसायनिक यौगिकों की उत्पत्ति समझाने के लिये बरजेल्स्यूसने युगल-विधान (*Dualistic system*) रक्खा था परन्तु इसका कार्बनिक यौगिकों में प्रयोग करनेमें कोई विशेष सफलता न प्राप्त हो सकी। इसके बाद डूमाका यांत्रिक सिद्धान्त कुछ दिनों तक चला परन्तु इसको भी ओस की भाँति सूख जाना पड़ा। बरजेल्स्यूस ने सिरकाम्ल इत्यादि के उदजन परमा-

पुत्रों का हरिन् इत्यादि ने स्थापित होना समझाने के लिये एक और अद्भूत कल्पना को कि प्रत्येक यौगिक दो प्रकार के भागों से बनता है जिनमें से केवल एक ही के परमाणु स्थापित होते हैं और इस प्रकार इस भाग में भिन्नभिन्न प्रकार के परमाणु आ जाने से कोई भेद नहीं पड़ता परन्तु दूसरे भाग में स्थापन होने से अवश्य ही उसके स्वभावमें अन्तर आ जाता है। इस कल्पना के अनुसार सिरकाम्ल और त्रिहरि-सिरकाम्ल को इस प्रकार लिखा जा सकता है :—

क_२ उ_२ + क_२ ओ_२ + ओ_२ उ

क_२ ह_२ + क_२ ओ_२ + ओ_२ उ

अर्थात् सिरकाम्ल का क_२ उ_२ ऐसा भाग है जिसमें स्थापन होनेसे उसके स्वभावमें विशेष भेद नहीं पड़ता। इस प्रकार बरजेत्यूस ने अपने सिद्धान्त की पुष्टि की क्योंकि यहावात मेलसन के कार्य्य से भली भाँति विदित हो गई थी कि इन दोनों अम्लों में विशेष भेद नहीं है क्योंकि दोनों एक दूसरे में परिवर्तित किये जा सकते हैं। पाठक देखेंगे कि बरजेत्यूस की इस कल्पना में ही वर्तमान सिद्धान्त की भूलक दिखाई देती है परन्तु वह इसको भले प्रकार न समझ सका और अपने पुराने विचारों की पुष्टि की धुन में अपने कार्य्य के स्वयं ही न समझ सका।

कोल्बे ने जो कि बरजेत्यूस सिद्धान्त का अनुयायी था बरजेत्यूस के नये विचारों का समर्थन किया और उनमें वृद्धि भी की और अधिक संकीर्ण मूलों का विचार प्रगत किया जिसके अनुसार सिरकाम्ल के दो भाग हुये, क उ_२ क_२ (सिरकील) जिसमें कर्बन दारील मूल के साथ आवद्ध है। यह सिरकील ओषजन से मिलकर सिरकेपील क_२ उ_२—क_२ ओ_२ बनाता है और सिरकेपील के जल से मिलने पर सिरकाम्ल प्राप्त होता है। यदि ध्यान देकर देखा जाय तो कोल्बे के विचार वर्तमान विचारों से अधिक दूर नहीं हैं क्योंकि इससे स्पष्ट दिखाई देता है कि सिरकाम्ल में आधा कर्बन दारील मूल में मिला है और आधा ओषजन के रसायनिक

स्नेह को संतुष्ट करता है।

हूमा और गरहर्ड के शेष और रूप सिद्धान्तों का वर्णन विस्तार पूर्वक पिछले कुछ पृष्ठों में दिया जा चुका है। हाफमैन और वूर्ज के कार्य्य से अमोनिया रूप के यौगिकों की उत्पत्ति हुई और एक नये प्रकार का रूप विदित हुआ। विलियमसन ने १८५० ई० में ज्वलक और मद्य का जल रूप यौगिक होना सिद्ध किया। इसके कुछ ही पश्चात् गरहर्ड ने स्वयं अम्ल अनार्द्रिद बना कर यह सिद्ध किया कि सिरकाम्ल और सिरकील अनार्द्रिद में वही संबंध है जो मद्य और ज्वलक में अर्थात् अनार्द्रिद भी जल रूप के यौगिक हैं। इस कार्य से मद्याल मूलों की भाँति सिरकील मूलों की सम्भावना भी विदित हुई। जब एक बार यह सिद्ध हो गया कि कार्बनिक यौगिक साधारण अकार्बनिक यौगिकों से केवल स्थापन क्रिया से ही प्राप्त हो सकते हैं और भिन्न भिन्न रूपों से उनकी उत्पत्ति समझाई जा सकती है तो और नये नये रूप विदित करने की लालसा रसायनज्ञों के मन में स्थान पाने लगी। इस प्रकार गरहर्ड और लोरे ने चार प्रकार के रूप चुने; जल, अमोनिया, उदहरिकाम्ल और उदजन (गरहर्ड और लोरे के अनुसार उदजन का सूत्र उ_२ था)।

१८५१ ई० में विलियमसन ने भिन्न भिन्न अकार्बनिक अम्लों के गठन समझाने की चेष्टा की और उनको जलरूप के यौगिकों में रक्खा और बतलाया कि कुछ मूल जैसे क_२ उ_२ ओ_२ और ना ओ_२ इत्यादि जल का एक उदजन परमाणु स्थापित कर के इक्कारिक अम्ल देते हैं और क_२ ओ_२, ग ओ_२ इत्यादि। जल के दो अणुओं में से प्रत्येक का एक उदजन परमाणु स्थापित कर के द्विचारीक अम्ल देते हैं। विलियमसनका आज से ८० वर्ष पहिले इतने स्पष्ट रूप में अम्लों की उत्पत्ति को इतनी ठीक रीति से समझाना कोई कम महत्त्व की बात नहीं है क्योंकि वैसे भले ही संयोग शक्ति इत्यादि के विचार आ गये हों परन्तु उनके गठन के विचार बिल्कुल अभी तक वैसे हो चले जाते हैं और काफ़ी हद तक ठीक हैं।

फिर १८५४ ई० में विलियमसन ने स्फुर पंचहरिद के प्रभाव से गंधकाम्ल से गन्धकील हरिउदेत तथा गन्धकील द्विहरिद प्राप्त किये और गन्धकाम्ल को ग ओ, (ओ३), का सूत्र दिया । इसके पश्चात् ओडलिंग ने गन्धकी गन्धकाम्ल का गठन समझने में इसी सिद्धान्त का प्रयोग करके निम्न लिखित सूत्र बतलाया ग ओ, }
 २ सै' } ओ'' + ग'', इस प्रकार

मिले हुए रूपों की यौगिकों में विद्यमानता की शर्तें पहिली बार जानी गईं । उसी वर्ष बरथेलो ने मधुरिन के लवणों को इक चारिकाम्ल के एक, दो, तीन अणुओं के साथ बनाया और इनकी उत्पत्ति वृज्ज ने मधुरिन के त्रिउदिक मद्य होने के कारण बतलाई और इसी के आधार पर वृज्ज ने मधुओल का अन्वेषण दूसरे ही वर्ष किया । इस प्रकार बहुसंयोगिक मूलों का विचार रसायनज्ञों को क, उ, "

उ, { ओ,

भली भांति प्रतीत होने लगा । पाठकों को याद रहे कि उस समय मधुरिन को क उ, ओ उ की तरह

क उ ओ उ
 |
 क उ ओ उ

नहीं लिखा जाता था क्योंकि उस समय तक सूत्र लिखनेकी विधि ज्ञात नहीं थी । इसका श्रेय केक्यूलेको है जैसा कि आगे दिखाया जावेगा । संयोग शक्तिके विचारकी कुछ कुछ फलक ओडलिंगके फारमूलोंसे प्रतीत होती है । फ्रैंकलैंडने १८५२ ई० में संयोगशक्ति पर सबसे पहिले अपने विचार प्रगट किये परन्तु यह कहना कि संयोगशक्ति का पहिला प्रयोग करने वाला फ्रैंकलैंड था या केक्यूले कठिन है क्योंकि इस विषय में वैज्ञानिकों के सम्मति में भेद है । केक्यूले का सर्व प्रथम लेख जिसमें उसने स्पष्ट रूप में इस पर

ज़ोर दिया है १८५४ ई० में छपा था, परन्तु हम तो दोनोंको ही इसका श्रेय देना ठीक समझते हैं । परन्तु केक्यूले का नाम इस कारण अधिक प्रचलित और प्रसिद्ध हो गया कि उसने इसी के आधार पर सब यौगिकों की रचना और सूत्र समझाये । यद्यपि इस विषय पर दोनों ओर से बहुत से प्रमाण दिये गये हैं पर इस जगह न उनके देने की आवश्यकता है और न स्थान है । केक्यूले का विचार था कि किसी तत्व का तुल्यांक भार भले ही बदलता रहे उसकी संयोग शक्ति परमाणु भार की ही भांति स्थिर रहती है परन्तु यहां केक्यूले बिल्कुल गलती पर था । इसके विरुद्ध फ्रैंकलैंड संयोग शक्ति को घटने बढ़ने वालो संख्या समझता था और वास्तव में वह ठीक भी है । तत्वों की संयोगशक्ति का ज्ञान भी सबसे पहिल फ्रैंकलैंड के ही कार्य्य से विदित हुआ यहां पर केक्यूले और फ्रैंकलैंड के पहिला या दूसरा होने में मत भेद है परन्तु प्रो० जैप का कहना है कि वास्तव मे इस का श्रेय फ्रैंकलैंड को ही है । क्योंकि केक्यूलेकी परिवर्तनशील संयोग शक्तियां और वह भी तुल्यांकों के साथ (परमाणुओं के साथ नहीं) संयोग शक्ति से बिल्कुल पृथक् थीं । परन्तु हमें इन बातों को यही छोड़कर आगे बढ़ना चाहिये क्योंकि न तो मूल सिद्धान्त और न रूप सिद्धान्त—दोनों में से कोई भी नहीं रहा है और वास्तव में दोनों के मिलने से ही संयोगशक्ति सिद्धान्त उत्पन्न हुआ । फ्रैंकलैंड को इस बात का अवश्य ही अपने विचार प्रगट करते हुये ध्यान था कि उसके विचारों से दोनों सिद्धान्तों का मेज हो जायगा और रसायनज्ञों के विचार जो कि अभी तक इन सिद्धान्तों के कारण एक दूसरे के विरुद्ध रहे थे एक हो जायेंगे । यद्यपि साधारणतः केक्यूले को संयोग शक्तिका अन्वेषक नहीं माना जाता परन्तु रसायनिक रचना का संयोगशक्ति के आधार पर समझने का मुख्य श्रेय उसी को है । जैसा कि फ्रैंकलैंड के शब्दों से प्रतीत होता है—“मैं यह कभी नहीं भूल सकता कि वर्तमान संयोगशक्ति सिद्धान्त का विस्तार बहुत

कुछ दूसरे रसायनज्ञों और विशेषकर केक्यूले और कैनीजों के परिश्रम का फल है। और यदि कैनीजों ने तबों के परमाणु भागों को वर्तमान दशा में न दिखाया होता तो संयोगशक्ति सिद्धान्त का विस्तार एक प्रकार से असम्भव ही होता।

यह पहिले ही बतलाया जा चुका है कि गुणक मूलोंका प्रयोग विलयमसन गन्धकाम्ल की रचना समझाने में कर चुका था और १८५४ ई० में केक्यूले ने इसीका प्रयोग एक अद्भुत रीतिमें सिरकाम्ल और स्फुर पंचगन्धिद के मिलने से गन्धकी सिरकाम्ल की उत्पत्ति समझाने में किया और दिखलाया कि स्फुर पंचगन्धिद का प्रभाव विलकुल सिरकाम्ल पर स्फुर पंचहरिद के प्रभावके समान है। परन्तु गन्धिदके साथ जो योगिक बनता है वह हरिद के समान विभाजित नहीं होता क्योंकि गन्धककी मात्रा जा दो हरिन् परमाणुओं के तुल्य है विभाजनीय नहीं है जैसे

$$5 \text{ क. उ. ओ. } \left\{ \begin{array}{l} \text{ओ} + \text{स्फु. ग.} = 5 \text{ क. उ. ओ. } \\ \text{उ} \end{array} \right\} \text{ ग}$$

+ स्फु. ओ.

5 क. उ. ओ. $\left\{ \begin{array}{l} \text{ओ} + 2\text{स्फु. ग.} = 5 \text{ क. उ. ओ. } \\ \text{उ} \end{array} \right\} \text{ ह ओ}$

+ स्फु. ओ.

परन्तु हरिद के साथ बना हुआ योगिक तुरन्त ही उदहरिकाम्ल और सिरकीलहरिद में विभाजित हो जाता है।

5 क. उ. ओ. $\left\{ \begin{array}{l} \text{ह ओ} \\ \text{उह} \end{array} \right\} \text{ — } 5 \text{ क. उ. ओह} + 5 \text{ उह}$

केक्यूले के शब्द जिनमें उसने इस प्रक्रिया का वर्णन किया है नीचे दिये जाते हैं।

“यह केवल मूत्र लिखने में ही अन्तर नहीं है परन्तु वास्तव में एक ठीक बात है कि जल का एक परमाणु उदजन के दो और ओपजन के एक परमाणु से मिलकर बनता है और हरिन् की वह मात्रा जो ओपजन के एक अविभाजनीय परमाणु के बराबर है दो से भाग दी जा सकती है परन्तु ओप-

जन की भांति गन्धक भी द्वितारिक है अर्थात् गन्धक का एक परमाणु हरिन् के दो परमाणुओं के समान है।”

१८५७ ई० में केक्यूले ने इसका मार्श गैस रूपों को दोहराते हुये उनमें जल, अमोनिया तथा उदजन की वृद्धि की और उमी समय निश्चित रूपों का विचार भी प्रस्तुत किया। यद्यपि यह रूप लगभग गुणक रूपों से मिलते थे परन्तु इनमें भिन्न भिन्न रूपों के परमाणुओं का साथ साथ प्रयोग भी शामिल था। इस प्रकार निम्न लिखित पदार्थ सरलता से प्राप्त हो सकते थे।

उ $\left\{ \begin{array}{l} \text{उ} \\ \text{क. उ. } \end{array} \right\} \text{ ओ } \left\{ \begin{array}{l} \text{उ} \\ \text{ओ} \end{array} \right\} \text{ ओ से; और}$
 ग ओ $\left\{ \begin{array}{l} \text{उ} \\ \text{ओ} \end{array} \right\} \text{ ओ } \left\{ \begin{array}{l} \text{उ} \\ \text{उ} \end{array} \right\}$

व्वलील गन्धकाम्ल

उ $\left\{ \begin{array}{l} \text{नो} \\ \text{उ} \end{array} \right\} \text{ ओ } \left\{ \begin{array}{l} \text{उ} \\ \text{उ} \end{array} \right\} \text{ नो}$
 गओ $\left\{ \begin{array}{l} \text{ओ} \\ \text{उ} \end{array} \right\} \text{ ओ } \left\{ \begin{array}{l} \text{उ} \\ \text{उ} \end{array} \right\} \text{ ओ}$

गन्धामिकाम्ल

बाई ओरके (कोष्ठों) से उन उदजन परमाणुओं का अर्थ है जो बहु परमाणिक मूलों से स्थापित हुये हैं। मूल के विषय में केक्यूले के विचार निम्नलिखित शब्दों से भली भांति विदित हो जायेंगे—

“हमारे विचारों के अनुसार मूल किसी मुख्य विभाजन से अप्रभावित शेष हैं, इनमें एक और उमी वस्तु में हम बड़े या छोटे समूह के अनुसार जिसपर कोई प्रभाव न हुआ हो बड़े या छोटे मूल की सम्भावना की कल्पना कर सकते हैं।” जिस प्रकार लवण बनने के अनुसार गन्धकाम्ल में (ग ओ.) मूल की उपस्थिति मानी जाती है उमी प्रकार यह विलकुल जल के समान

जिसका ओपजन परमाणु (ग ओ) से स्थापित किया गया हो प्रतीत हातो है,

उ ओ उ ग ओ ,
उ ओ उ ग ओ ,

और यदि गन्धकाम्ल पर स्फुर पंचहरिद का प्रभाव देखा जाय तो विदित होता है कि गन्धकाम्लके दो ओपजन परमाणु उदजन के साथ हरिन् से स्थापित हो जाते हैं अथवा ग ओ . ह प्रप्त होता है इस प्रयोग से यह विदित होता है कि गन्धकाम्ल में गओ , मूल है न कि गओ , इसलिये किसी मूल का बड़ा या छोटा होना मुख्य विभाजन क्रिया पर निर्भर है और बड़ा मूल छोटे मूल से कुछ और परमाणु मिलाकर बन सकता है"। इन शब्दां से स्पष्ट विदित होता है कि उस समय मूलों का परिवर्तन उनके परमाणुओं के आयोजन क्रमसे समझाने की रुचि बढ़ती जा रही थी ।

१८५८ ई० में केक्यूले ने अपना विश्वविख्यात लेख छपा जिसमें उगने दारेन रूप की महत्ता दर्शाई और दिखलाया कि जब कभी दारेन का एक उदजन परमाणु स्थापित हो जाता है कर्बन शेष उदजन परमाणु के साथ एक मूल के समान बन जाता है और इस मूल की संयोगशक्ति १ और बढ़ जाती है । यदि देखा जाय तो इन कुछ शब्दों ही में कार्बनिक रसायनका सारा कोप भरा हुआ है क्योंकि जिन दोनो नियमोंके लिये केक्यूले का नाम प्रसिद्ध है उनका मुख्य तत्व इन्हीं पर निर्भर है ।

कउ, - > कउ, ह- > कउ, ह - > कउ, ह, - > कउ, ह, इसके पश्चात् उनमें इन मूलों में कर्बन और उदजन का अनुपात निकाल कर मूलों का साधारण सूत्र क, उ, , रक्खा । इन सब के करने से केक्यूले को एक बड़ी महत्व पूर्ण बात विदित हुई कि जब कभी मूल में १ से अधिक कर्बन परमाणु होते हैं वह सर्वदा एक दूसरे में जुड़े रहते हैं यथापि आजकल यह बात साधारण सी ही विदित होती है परन्तु उस समय इसके छपते ही वैज्ञानिक जगत् में हल चल मच गयी क्योंकि पहले किसी सिद्धान्त में इसकी

भनक तक भी नहीं थी । एक बार कुञ्जी मिल गई तो फिर कार्बनिक यौगिकों की रचना समझाना बहुत सहल हो गया ।

यद्यपि केक्यूले ने सब से पहिले यह सिद्धान्त रक्खा परन्तु चित्रमय सूत्रसे कार्बनिक यौगिकोंको समझाने वाला कूपर था पर इनसे कुछ अधिक प्रभाव न पड़ सका । उसके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं ।

क उ,	क उ,	क उ
क उ,	क उ,	क उ,
ओ—ओ उ	ओ	—ओ
ज्वलील मद्य		ज्वलक

सन १८६१ में केक्यूले की पुस्तक का पहिला भाग छपा और इसमें बहुत से यौगिकों से उदाहरण देकर इस सिद्धान्त का महत्व पूरे तौर पर समझाया गया । बरजेल्यूम का विद्युत् रसायनिक सिद्धान्त लग भग छिन्न भिन्न होने लगा था और कर्मवीरों के परिश्रम से कार्बनिक रसायन में संयोग शक्ति सिद्धान्त की जड़ जमने लगी ।

केक्यूले ने दूसरी बड़ी बात कर्बन की संयोगशक्ति के विषय में की । यहां पर फिर इस कार्य की महत्ता पाठका को दिखाने के लिये केक्यूले के ही शब्दों में वर्णन किया जायगा ।

“कार्बनिक यौगिकों के स्वभाव समझाने से लिये में यह आवश्यक समझता हूँ कि हमको उन तत्वों का ज्ञान जिनसे मिलकर यौगिक बनता है होना चाहिये । मैं नहीं समझता कि अब मूल-समूहों की उपस्थिति सिद्ध करने की कोई विशेष आवश्यकता शेष रह गई है और न केवल कुछ स्वभावों से ही हमें इन मूलों के विषय में कुछ अनुमान लगा लेना चाहिये बल्कि अब हमारा मुख्य कार्य इन मूलोंकी रचना को समझाना है और उनका एक दूसरे में संबन्ध बनाना है और तत्वों के स्वभाव से मूलों और यौगिकों के स्वभाव का पता लगाना एक विशेष कार्य होना चाहिये ।”

इस प्रकार केक्यूले ने संयोगशक्ति सिद्धान्त को बढ़ाने के प्रयत्न करने पर जोर दिया। इस विषय में उसने कर्वनकी संयोग शक्ति पर भी विशेष ध्यान दिया और भिन्न भिन्न यौगिकों के उदाहरण देकर कर्वनकी ४ रक्खी जैसे क उ, ह, क उ ह, क ह., क उ., क उ ह., क ओ ह., क ओ., क ग., उ क नो इत्यादि। इनके साथ ही साथ कर्वन परमाणुओं के बनने का विचार भी प्रगट किया। इस प्रकार केक्यूले ने संयोग शक्ति सिद्धान्त से पुराने मूल और रूप सिद्धान्त दोनोंका टुक दिया। पाठक इन सब पृष्ठों को पढ़ कर समझ गये होंगे कि क्यों केक्यूले को ही इस सिद्धान्त का मुख्य अन्वेषक माना जाता है क्योंकि उसने लगभग अपनी सारी आयु इसी कार्य में लगा दी और दूसरे इसकी सहायता से कार्बनिक यौगिकों की उत्पत्ति तथा रचना ठीक ठीक समझा दी।

कर्वन की संयोगशक्ति ४ होने पर भी कोल्बे और फ्रैक्लैंड ने अपने को प्रथम सिद्ध करने में बहुत से प्रमाण दिये हैं। पर जो भी हो जा प्रभाव केक्यूले के लेखों का कार्बनिक रसायन की दशा सुधारने में पड़ा वह इन दोनों व्यक्तियों के लेखोंका नहीं पड़ा यद्यपि कोल्बे के लेख में स्पष्टतया कर्वन के चतुर्शक्ति होने का वर्णन है तो भी कर्वन परमाणु बनन का वर्णन उसके लेख में कहीं नहीं मिलता। कोल्बे अन्त तक केक्यूले के इस सिद्धान्त के विरुद्ध ही रहा और वैसे तो कोल्बे रसायन क्षेत्र में सबसे प्रसिद्ध आलोचक हुआ है जैसा कि आगे बतलाया जायगा। परन्तु यह नहीं भूलना चाहिये कि इसी सिद्धान्त (अथवा कार्बनिकाल से भिन्न भिन्न कार्बनिक अम्लो, मशानाओं तथा कीतानों के बनने) की सहायता से कोल्बे ने द्वि-और त्रि-मण्डों की उत्पत्ति की सम्भावना की भविष्यवाणी की और जिसकी सत्यता का प्रमाण प्रत्यक्ष उपस्थित है। वास्तवमें यह उसके लिये पूर्ण विजय की बात थी।

केक्यूले ने परमाणुओं के मूर्ति रूप भी बताने की चेष्टा की थी और उसमें काफी सफलता भी प्राप्त

हुई। क्रमब्राउन ने परमाणु का रूप एक गोले की भाँति बतलाया परन्तु केक्यूले ने इसके विरुद्ध बात बतलाई कि यदि कर्वन की चारों संयोग-शक्तियाँ गोले को बाहरी मतलब के चार बिन्दुओं के केन्द्र से मिली हुई रेखाओं से दर्शाई जायें तो सिर-किलीन, ज्वलिलिन इत्यादिकी रचना नहीं सम्भाव्य जा सकती अथवा एक कर्वन परमाणु एक से अधिक संयोग शक्ति से नहीं मिल सकता इसलिये उसने अपना चतुर्भुज फारमूला रक्खा, जिसका महत्व वाण्ट हाफ द्वारा अवकाशरसायन सम्मानने में पूरे तौर से विदित हुआ।

केक्यूले ने इसके पश्चात् वानजावोन की रचना पर एक नया सिद्धान्त रक्खा जिसका कहते हैं कि उसने स्वप्न में देखा था। इसके अनुसार वानजावोन के छहों कर्वन परमाणु एक बन्द शृङ्खला में बंधे हुये हैं और प्रत्येक परमाणु के साथ एक उदजन परमाणु भी लगा हुआ है। यद्यपि वानजावोन के संबन्धा यौगिकों का बनना और स्वभाव इत्यादि पर बहुत कुछ कार्य उस समय तक हो चुका था परन्तु इनकी रचना का कोई भी ज्ञान किसी को प्रतीत न होता था, केवल यह ही नहीं केक्यूले ने इस सिद्धान्त के आधार पर बहुत से अज्ञात यौगिकों के बनने की सम्भावना और बहुत से बनने की असम्भावना भी प्रगट की। केक्यूले ने यह भविष्यवाणी आजसे ७५ वर्ष पहिले की थी और यह देखकर किफको आश्चर्य न होगा कि लगभग वह सब यौगिक जिनकी सम्भावना उसने दर्शाई थी बन चुके हैं और जो यौगिक उनके अनुसार बनने असम्भव थे उनमें से एक भी नहीं बन सका है जैसे क उ, ओ, क उ, ग, क उ, नो इत्यादि। आमत्र शृङ्खला तथा बन्द केन्द्र का ज्ञान पहिले केक्यूले से ही प्राप्त हुआ था। इसमें से महत्त्व पूर्ण कार्य वानजावोन के यौगिकों की समरूपता सम्मानता था जैसे पूर्व, मध्य और पर। इस लेख में बन्द शृङ्खला और आसन्न शृङ्खला का भेद और स्थापन नियम का भी वर्णन है। इसी

विचार का प्रयोग अरलेनमायर ने नपथलिन और डेवान ने पिरॉडन की रचना समझाने में किया है। केक्यूले के सिद्धान्त से और गठनात्मक मूलों से समरूपता समझाने में बहुत सहायता मिली है। कहां तक वर्णन किया जाये, संयोग शक्ति सिद्धान्त पर अकेले केक्यूले का ही कार्य्य दिखाने के लिये एक पूरी पुस्तक लिखी जा सकती है परन्तु इन थोड़े से प्रष्टों को पढ़ने से पता लग जायगा कि केक्यूले का ससिष्क कितना तीव्रण और उपजाऊ था। नई तरह से तत्त्वांकी स योग शक्ति निकागने और रसायन को एक ठीक और सुरक्षित आधार पर रखने मे हमें कैनीजारो की सेवा का न भूल जाना चाहिये। यदि कैनीजारो ने अथेगाट्रो के सिद्धान्त का सहस्व न समझाया होता तो हम लोग आज उतनी ही उलभन और अन्धरे मे होते जितने कि पहिले थे। इस सव का वर्णन आवर्त संविभाग (Periodic Law) के साथ किया जायगा। संयोग शक्ति के सम्बन्ध मे फ्रैकलैंड और डूमा का कार्य्य सिस्कोसिरकिल सम्मेल पर भी वर्णन योग्य है। इन प्रष्टों में संयोग शक्ति सिद्धान्त का वर्णन एतदाभिक दृष्टि से किया गया है, यद्यपि इसका पूरा इतिहास इतनी थोड़ी जगह मे देना असम्भव है पर तब भी आशा है कि इसमें कुछ लाभदायक बातें विवित होगी। शेष कुछ प्रष्टों मे कोन्वे, फ्रैकलैंड तथा केक्यूले के जीवन और कुछ दूसरे कार्य्यों का वृत्तान्त दिया जायेगा।

अडोक्त विलयन हरमन कोल्वे

कोल्वे का जन्म १८१८ ई० गोटिंगन के पास ऐलीहाउसन में हुआ था। उसी प्रारम्भिक विद्या वहीं के एक स्कूल में हुई। २० वर्ष की आयु होने पर उसने वाटर के यहाँ रसयनशास्त्र अध्ययन आरम्भ किया और १८४२ में मारबर्ग विश्वविद्यालयमें चुनसल का सहकारी नियुक्त हुआ परन्तु इस के तान ही वर्ष बाद लार्ड फेकेयर का अध्यक्षाता में कार्य करने

के लिये लन्दन चला गया और १८५० ई० से १८५१ तक लीजिंग तथा बोलर को पुस्तकों के सम्पादन करता रहा। इसके एक वर्ष पश्चात् बुनसन के स्थान पर मारवर्ग विश्वविद्यालय में नियुक्त किया गया और १८६५ ई० में लाइपज़िग में मुख्य रसायनाचार्य के पद को ग्रहण किया।

कोल्बे का सब से महत्व पूर्ण कार्य अम्लों के विद्युत् विश्लेषण पर हुआ जिससे कार्बनरु रसायन के सैद्धान्तिक विषय का अति लाभ पहुँचा जिस कि पहिले कहा जा चुका है। वरजैन्डूम सिरकासल का दारौल तथा काष्ठिकासल का योग मानता था। कोल्बे को ध्यान आया कि यदि सिरकासल से यह दोनो वस्तुएँ बन सकें तो इसका प्रयोगिक प्रमाण सहज ही में मिल जायगा और वास्तव में उनने जय इस प्रयोग को किया तो उजलेन तथा कर्बन द्वि ओपिद मिली। परन्तु उन समय के अनुपार कोल्बे ने इसकी निम्न लिखित रीति से समझाया क्योंकि वह भी सिरकासल को काष्ठिकासल तथा दारौलका योग मानता था।

क ३, क. ओ, = क. ३ + २क ओ.

परन्तु वर्तमान प्रणाली के अनुसार इसको दूसरी रीति से समझाया जाता है:—

$$\begin{array}{ccc} \text{ક ડ, ક ઓ ઓ ડ} & & \text{ક ડ,} \\ & = \text{ડ.} + \text{૨ક ઓ.} + & | \\ \text{ક ડ, ક ઓ ઓ ડ} & & \text{ક ડ,} \end{array}$$

सिरकागला उदजन तथा (क उ, क ओ ओ) । मे यापन हो जाता है । उदजन यवन ऋणोद पर चले जाते हैं परन्तु सिरकेत यवन धनात्मक भिजलोद पर विभाजन होकर उवलेन तथा कर्वन द्विओपद बनाते हैं । कांस्ते का विचार था कि उसका दारील मून मिल गया क्योंकि मून सिद्धान्त के कारण मून तैदगर करने की धुन उमको भी सवार थो, और इम प्रयोग से उसे षडो हो प्रपन्नता हुई परन्तु वास्तवमें यद दारील नहीं था बल्कि उवलेन था, क्योंकि कि द्वा दारील मूनां को मिल जाने से उवलेन बन जाती है ।

क ३, + क ३, = क ३ :

यदि कोल्बे ज़रा भी अपने विचारों को उदार करना तो कैथ्यूल् के बजाय वह ही कर्बन परमाणु बन्धन नियम का प्रथम बनाने वाला होता क्योंकि इस प्रयोग से यह स्पष्ट विदित है कि बिना एक दूसरे कर्बन परमाणु के जुड़े हुये ज्वलन नहीं उत्पन्न हो सकती।

कोल्बे और फ्रैंकलैंड ने दारौल श्यामिद के उद्‌करण से सिरकामु तथा अमोनिया बनाया और इस प्रयोग को अपने सिद्धान्त का दूसरा प्रमाण समझा क्योंकि श्यामजन के उद्‌करण से कार्बामु बनता है।

क. ३, क. नो + ३ उ ओ = क. ३, क. ओ, + नो ३.

मैथक विटपेत के अद्भुत संश्लेषण का श्रेय कोल्बे ही का है। यदि मैथक दिव्यत को गर्म करके उसमें कर्बन द्विआपिद प्रवाहित की जाये तो विटपेत बन जाता है इस प्रक्रिया को भली प्रकार अभी तक कोई भी नहीं समझ सका है। अपने सैद्धान्तिक विचारों में कोल्बे बड़ा दृढ़ था और कभी सरलता से उनमें परिवर्तन नहीं करता था यद्यपि उसके समय में संयोग शक्ति सिद्धान्त काफी जड़ पकड़ चुका था तथा भी वह अपनी ही बातों पर अन्त तक डटा रहा। हां यह बात सत्य है कि उसके विचार गरहडे के रूप सिद्धान्त से कहीं लाभदायक और गूढ़ थे और इन्हीं के आधार पर उसने द्वि-और त्रि-संयोग के बनने की भविष्य वाणी की। और यही नहीं बल्कि उनके आपोनीकरण इत्यादिके विषय में भी काफी गूढ़ बातें बतलाई थी जो कि उनके कुछ ही दिनों बाद ठीक विदित हुईं।

कोल्बे उच्च कोटि के अन्वेषकों और विचारवान पुरुषों में से था, साथ ही साथ उसके लिखने की रीति बड़ी प्रभावशाली और रोचक थी परन्तु समालोचना करने में वह कभी कोई बात ठान रखता था और इसमें कुछ सन्देह नहीं कि उसकी समालोचनाओं से कार्बनिक रसायन के विस्तार

पर काफी प्रभाव पड़ा। वास्तव में वह अपने समयका जहाँ तक कि समालोचना का सम्बन्ध है बरजेल्स्यूस ही था। जबकि वाएट हाफ और लाबेलने अवकाश रसायन का सिद्धान्त जो कि आजकल इतना प्रसिद्ध है दिया तो उसने भरपूर वाएटहाफ के कार्य की निन्दा की क्योंकि उस समय वाएटहाफ नव युवक ही था और एक पशु चिकित्सा के स्कूल में अध्यापक था, इस कारण कोल्बे उसके कार्य को सराह न सका परन्तु समय ने बता दिया कि यह कोल्बे की भूल थी। १८८४ ई. में ६६ वर्ष की आयु में कोल्बे का देहान्त हुआ।

सर ऐडवर्ड फ्रैंकलैंड

१८२४—१८८६

फ्रैंकलैंड का जन्म १८ जनवरी १८२५ ई० को लङ्काशायर के एक छोटे से चर्च टाउन नामक गांव में हुआ। उसको प्रारम्भिक शिक्षा उसी गांव के स्कूल में हुई, इस के पठान् उसके पिता का विचार हुआ कि नवयुवक फ्रैंकलैंड कुछ वैद्यक पढ़ कर घर-घर के कार्यों में लग जाय। इस विचार को पूरा करने के लिये वह एक वैद्यकी दूकान पर नौकर हो गया परन्तु वहाँ पर उसे कोई तृप्ति न हुई क्योंकि यहाँ तो व्यापार का सामला था, शिक्षा का क्या काम। वहीं पर एक महानुभाव डा० जानपन रहते थे जिन्होंने फ्रैंकलैंड को तीक्ष्ण बुद्धि को पहचान कर उसकी सहायता की और बहुत सी वैज्ञानिक पुस्तकें तथा अपनी छोटी सी प्रयोगशाला में कार्य करने की सुविधा भी प्रदान की। छः वर्ष इस दूकान पर रहकर फ्रैंकलैंड को इस कार्य से छुटकारा मिला क्योंकि यहाँ पर उसका कार्य पीपों में दवा भरना, अम्ल इत्यादि जलाना ही था जिसको करते करते उसे घृणा हो गई थी। लन्दन जाकर फ्रैंकलैंड डा० फ्लेकेयर (लार्ड फ्लेकेयर) की प्रयोगशाला में भर्ती कर लिया गया। पाठकों को याद रखना चाहिये कि प्राचीन काल के बहुत से रसायनज्ञों का रसायन का प्रेम वैद्यों की ही दूकानों से उत्पन्न हुआ था

यद्यपि उनमें रहकर वह कोई विशेष कार्य नहीं कर सके। लेकिन उस समय प्रसिद्ध रसायनज्ञों में से था क्योंकि कुछ दिनों पहिले ही वह लॉबिग की प्रयोगशाला में कार्य करके लौटा था। अब फ्रैंकलैंड की रसायनिक शिक्षा का आरम्भ हुआ और उसके कार्य से उसका स्वामी इतना प्रसन्न हुआ कि तुरन्त ही उसने उसे अपने व्याख्यानोंका प्रयोगिक सहकारी बना लिया। इसके छः मास पश्चात् ही फ्रैंकलैंड को सरकारी कृषि कालेज सोन-स्सेटरमें आचार्यका पद ग्रहण करनेका प्रस्ताव हुआ परन्तु प्रयोग में, उम्मीद नमय उसकी कोत्से से जो लेकिनर का सहकारी नियुक्त हुआ था मित्रता हुई और उसके कहनेसे फ्रैंकलैंड ने बुनसन की अध्यक्षता में कार्य करने के लिये मारबर्ग को प्रस्थान किया। सन् १८४९ ई० में मारबर्ग विश्वविद्यालय में पी-एच. डी. का उपाधि पाकर जगतगुरु लॉबिग के ज्ञान मन्दिर को रवाना हुआ जहाँ कि उस समय के बड़े बड़े रसायनज्ञों ने शिक्षा प्राप्त की थी।

१८४९ ई० में एक स्कूल में उसको छोटे से वेतन को जगह मिली परन्तु १८५१ ई० में ओवेन्स कालेज मानचेस्टर में रसायनाचार्य के पद पर नियुक्त किया गया। इस के छः वर्ष पश्चात् सेन्ट वारथोलोम्यू चिकित्सालय में रहकर १८६३ में रायल इन्स्टीट्यूशन में अध्यापक नियुक्त हुआ और इसके दश वर्ष पश्चात् हाफमैन के जमनी लौट जाने पर उसकी जगह रायल कालेज में मुख्य आचार्य नियुक्त किया गया।

फ्रैंकलैंड का सब से उत्तम कार्य जिसमें उसका नाम सबदा जगत में जीवित रहेगा संयोगशक्ति सिद्धान्त के सम्बन्ध में कार्बनिक-धातविक यौगिकों पर हुआ। यह पहल ही कहा जाचुका है कि केक्यूले और फ्रैंकलैंड दोनों ही ने बिना एक दूसरे का कार्य जाने हुये संयोग-शक्ति सिद्धान्त के विचारों को प्रगट किया। यद्यपि इस में कोई सन्देह नहीं कि केक्यूले के विचार फ्रैंकलैंड से अधिक गूढ़ और पूर्ण थे परन्तु प्रयोगिक कार्य की स्वच्छता और

चतुरता के लिये फ्रैंकलैंड केक्यूले से कहीं बड़ा चढ़ा था। वृज्ज ने मशील हरिदों पर धातविक मैथकम् के प्रभाव से उदकर्वनों के बनाने की विधि निकाली थी और यदि वास्तव में देखा जाय तो वह केक्यूले सिद्धान्त का प्रथम प्रमाण था परन्तु इन में से किसी को भी यह बात न सुझी। यों तो बाया में आम और जामुन वृक्षों से पृथ्वी पर गिरा ही करते हैं परन्तु उन के गिरने का महत्व कुछ थोड़े से न्यूटनो के ही मतिष्क में आता है। फ्रैंकलैंड की उदकर्वनों के बनाने की विधि लगभग वृज्ज से मिलती जुलती ही थी, केवल बजाय से एक के दस्तम धातु प्रयोग की जाती थी।

क उ, ह + ह क उ, = द ह : क उ, क उ,
द

परन्तु यदि दस्तम् की मात्रा अधिक हो तो कार्बनिक धातविक यौगिक बन जाते हैं

क उ, ह + ह उ, क
द - द (क उ,) + द ह,
द

अभी तक ऐसा कोई उदाहरण नहीं था जिसमें कि धातु केवल मशील मूलों से मिली हो, हागों कि बुनसन ने पहिले ही केकंडिल यौगिक बनाकर इसका प्रमाण दे दिया था परन्तु उनमें आपत्तन भी साथ में होती थी। यों तो इस कार्य का कोई विशेष महत्व नहीं प्रतीत होता परन्तु आजकल कार्बनिक रसायन में धातविक यौगिक केवल अच्छे ही नहीं बल्कि आवश्यक हो गये हैं। इन यौगिकों की सहायता से भिन्न प्रकार के यौगिक जैसे उदकर्वन, मय, कोतान, अम्ल इत्यादि सब हो तैयार किये जा सकते हैं। बुनसन के अनुसन्धान के पश्चात् उसकी कोई विशेष रुचि धातविक यौगिकों की ओर आकर्षित न हो सकी थी परन्तु फ्रैंकलैंड के कार्य से एक नई ही रीति विधि हो गई और कई प्रयोग-शालाओं में इन पर कार्य आरम्भ हो गया। जैसा कि आगे बताया जायेगा, थिगनार्ड ने मगनीसम् का प्रयोग करके इसी प्रकार के यौगिक बनाये जिनका

वर्णन एक पूरी पुस्तक में भी नहीं हो सकता ।

फ्रैंकलैंड का दूसरा मुख्य कार्य डूमा के साथ मिरकोमिरिकक सम्मेलन पर हुआ । १८६३ ई० में गोथर ने ज्वलील सिरिकत पर सैपेक्कम् के प्रभाव में एक नया सम्मेलन तैयार किया था जिसका नाम बादमें मिरको सिरिकिकामु सम्मेलन पड़ा । यहाँ पर उन सब लेखों का वर्णन देना जिनमें कि इस विषय पर दोनों में वादविवाद रहा कठिन है परन्तु तब भी इतना कहना आवश्यक है कि इस कार्य में गोथर को अधिक सफलता प्राप्त हुई क्योंकि फ्रैंकलैंड और डूमा के विचारों के अनुसार इस प्रक्रिया की सफलता के लिये ज्वलील मद्य का होना आवश्यक था जो बाद में मूलतः सिद्ध हुआ । इन्हीं प्रयोगों के करने में इन दोनों ने चार या पाँच सम्मेलन और विदित किये । यद्यपि मिरकोमिरिकत को अलग न किया जाय और इस पदार्थ का ज्वलील हरिद के साथ गरम किया जाय तो निम्नलिखित चार सम्मेलन मिलेंगे—१—नवगतििक सम्मेलन, २—द्विज्वलील मिरिकिक सम्मेलन, ३—गोथरके सम्मेलनके समान एक यौगिक जिसका नाम इन्होंने ज्वलील का ज्वमिरिकोन वर्बनेत और ४—ज्वलील का द्विज्वमिरिकोन कबनेत । इन अनुमन्यानों का पूरा वर्णन वेहेन की कार्बनिक रसायन (ऑर्गेनी भाषा) में भलीभाँति मिल सकता है ।

फ्रैंकलैंड मुख्यतया प्रयोगिक था क्योंकि उनके अतिरिक्त अनुपन्धान प्रयोगिक ही है और ऐसा होना से उसे काँच फूटने में बड़ा निपुणता हो गई थी । विश्वविद्यालय भौतिक सर नारमन लाकर के साथ फ्रैंकलैंड ने मूर्य रॉस चित्र पर भी अच्छा कार्य किया और चित्र की कुछ रेखाएँ ऐसी प्राप्त की जो दुश्चोपर पर उपस्थित तत्वों में किसी से भी न मिलती थी, इसलिये इस रेखाओं वाले तत्व का नाम हिमजन (Hyman) रखा जिनका १८९६ में सर विलियम रैमसे ने वायु में से पृथक् किया ।

फ्रैंकलैंड को देराउन का बड़ा शौक था, अपनी युवावस्था में ही वह एक बार टिनडन के साथ

पैरिस, जर्मनी इत्यादि सबमें खूब घूमा था और बहुत से वैज्ञानिकों से मित्रता थी । विशेषकर नार्वे जाने का उसे विशेष चाव था यहाँ तक कि उनकी मृत्यु भी नार्वे ही में हुई । फ्रैंकलैंड अपने समय के मुख्य वैज्ञानिकों में से था, उस समय की वैज्ञानिक सभाओं का सदस्य होना उसके लिये साधारण बात थी । १८९७ ई० में महाराणी विक्टोरिया की होरक-जयन्ती पर उसे सर की उपाधि मिली, और बहुत से पदक भिन्न भिन्न सभाओं से मिले, मुख्यकर रायल सोसाइटी का रायलपदक और १८९४ में कापले पदक जा सोसाइटी का सर्वोच्च पदक है उसका अर्पण करके सोसाइटीने अपना और उसका गौरव बढ़ाया । फ्रैंकलैंड अपनी स्त्रीको बड़े प्रेम करता था, अभाग्यवश जिसकी मृत्यु जनवरी १८९९ में अकस्मात् ही हो गई । इसका दुःख फ्रैंकलैंड को असहनीय हो गया और आयु भी ७४ वर्ष की हो चुकी थी । अपने दुःख के दिलासे के लिये वेचारे ने दूसरी प्रेमिका (नार्वे) को प्रस्थान किया परन्तु वह प्रेमिका उसकी स्त्रीसे भी दृढ़ थी । अन्तमें ९ अगस्त ८९९ में अपनी स्त्री के पूरे ७ साल बाद इस संसार से विदा ली ।

फ्रेडरिक आगस्ट केक्यूले

१८२९—१८९६

केक्यूले का जन्म ९ मितम्बर सन् १८२९ को डर्मस्टेड में हुआ (डर्मस्टेड वह प्रसिद्ध नगर है जहाँ पर विश्वविद्यालय “मर्के कार्यालय” है) । केक्यूले बचपन से ही तीक्ष्ण बुद्धि और चतुर था । स्कूल में ही इसका प्रमाण उसके गणित ज्ञान से मिल चुका था । १८४७ ई० में शिप्पा पा चुकने पर उसके पिता का विचार नवयुवक को शिल्पी बनाने का हुआ । इस विचार की पूर्ति के लिये केक्यूले गोर्सेन विश्वविद्यालय के शिल्प विभाग में भर्ती हो गया । यद्यपि केक्यूले का जीवन किसी ऐसे कार्य में नहीं बीता जिसका शिल्पसे कोई सम्बन्ध रहा हो पर तब भी वह कभी इस समय को जो इस विद्या के सीखने में लगा बेकार नहीं समझता

था क्योंकि इस से उनके विचारों को जिनके कारण उसका नाम सर्वदा अमर रहेगा बड़ी सहायता मिली और जैसा कि बहुत से लोगों को विदित है कि सर्वदा वह प्रत्येक गवेषणा का चित्र अपनी आंखों के सामने रखना चाहता था। जैसा कि पिछले कुछ दृष्टों में वर्णन किया जा चुका है उसके बानजाबोन फारमूले तथा कर्वन परमाणु बन्धन नियम में इस ज्ञान को अच्छी खासी भूलक मालूम पड़ती है। बानजाबोन एक समपङ्क भुजसे दर्शाई जाती है। गोसेन विश्व-विद्यालय में केक्यूले के लॉविग के व्याख्यान सुनने का मौभाग्य प्राप्त हुआ। वस अब क्या था केक्यूले के हृदय को रसायन की लालसा ने भी मोहित कर दिया और अन्त में अपने पिता की आज्ञा पाकर उसने लॉविग की अध्यक्षता में कार्य्य आरम्भ कर दिया। लॉविग ने न जाने अपने व्याख्याता से कितने नव-युवकों को रसायन की ओर आकर्षित किया और वास्तव में वैज्ञानिक कार्य्यों के अतिरिक्त इन्होंने रसायनज्ञोंको उत्पन्न करना उनकी सर्वक ऊँची और उत्तम सेवा है। यहाँ रहकर केक्यूले ने अपने गुरु की बुद्धि को भी चकित कर दिया और केक्यूले को अपने पास रखने की सुविधा और लालच देने के विचार से लॉविग ने तुरन्त ही उसको एक सहकारी का पद देने का प्रस्ताव किया परन्तु कुछ कार्य्यसे निपुण होनेके लिये १८५१ से १८५२ तक डूमा को प्रयोगशाला का स्वाद चक्खा और १८५२ में गोसेन विश्वविद्यालय से पो-फच० डी० की उपाधि पाई। इसी वर्ष उसे लार्ड प्लांट के पास सहकारी का पद मिलगया। यहाँ रह कर प्लांट के साथ दो लेख ताम्बुलिन पर अबोल नैलिट के प्रभाव के संबंध में छापे जिनसे उसका नाम वैज्ञानिक केन्द्रों में प्रसिद्धि पाने लगा। १८५४ ई० में उसने इसी कारण अपना पद स्टैनहाउज से बदल लिया। यहाँ पर उसे ओडलिंग और विल-यमसन से मित्रता करने का अवसर मिला जिससे उसके विचारों पर बहुत प्रभाव पड़ा। जैसा कि केक्यूले ने कहा है:—

“यदि पेरिस में रह कर मुझे गरहर्ड के बिना

प्रकाशित किये हुये लेखों के पढ़ने का मौभाग्य प्राप्त हुआ तो लन्दन में विलयमसन और ओडलिंग की मित्रता का अद्भुत लाभ मिला, आरम्भसे लॉविग का शिष्य होते हुये भी मैं विलयमसन, डूमा तथा गरहर्ड का शिष्य बना; इसलिये मैं अपने को किसी एक व्यक्ति का शिष्य नहीं कह सकता।”

इस समयमें जो जगह जगह घूम कर उसने ज्ञान सन्निहित किया उनके प्रभाव और गुण का पता उसका कार्य्यों को पढ़ने से लग सकता है। यदि केक्यूले का विलयमसन तथा गरहर्ड से परिचय न हुआ होता तो बहुत कुछ सम्भव है कि वह सैद्धान्तिक कार्य्यमें इतना निपुण न हुआ होता। यदि उसने लॉविग के प्रस्ताव को लालची होकर मान लिया होता तो सम्भव है कि और सहकारियों की भांति वह भी एक गुरु की अध्यक्षता में सारी आयु कार्य्य किये जाता, जैसा कि बहुत से अच्छे और तीव्र बुद्धि वाले अपने गुरुओं के साथ कार्य्य करते करते आयु बिता देते हैं। लॉविग की प्रयोगशाला का बताया हुआ केक्यूले कभी भी वरजेत्यस के सिद्धान्तों का विरोध करने को न खड़ा होता और कार्बनिक रसायन भी इतनी शीघ्र विस्तृत न हुई होती।

इंग्लैंडसे लौटनेके पश्चात् केक्यूले हाइडेलबर्ग विश्वविद्यालय में नियुक्त किया गया और वहाँ उसने अपनी एक छोटी सी प्रयोगशाला बनाली। इस छोटे से मन्दिर में पॉला शिष्य होनेका मौभाग्य अद्भुत वायर के जिसका वृत्तान्त आगे दिया जायगा प्राप्त हुआ। यहाँ रहकर केक्यूले ने पारद विस्तृत (१८५५-१८५८) तथा सिरकाम्ल के मधुआलिका-मन पर दो उत्तम लेख छपवाये और यहाँ उसका संयोगशास्त्र तथा कर्वन परमाणु बन्धन नियम पर कार्य्य हुआ। इसका प्रभाव उस समय के वैज्ञानिकों पर ऐसा पड़ा कि तुरन्त ही ग्टास की सिरा-रिश से केक्यूले घेन्ट विश्वविद्यालयमें रसायन-चार्य के पद पर नियुक्त कर दिया गया। घेन्टमें नौ वर्ष रह कर उसने अपने जीवन के कार्य्य का अधिकतर भाग समाप्त किया और अपने भविष्य कार्य्य, नहीं बल्कि

कार्बनिक रसायन के भविष्य की नींव डाली। इसी विश्वविद्यालय में इमराल्दि, गालिक तथा सेविकास्ल का एक दूसरे से संवन्ध दिखलाया। उद्योग अम्लों का अरुणो अम्लों में परिवर्तन, द्वित्तरिक अम्लों का विद्युत् विश्लेषण, अरुणो वानजावीनोमें अरुणिन परमाणु को कर्बोपिल मूल से स्थापित करके वान-ज वीन श्रेणी के अम्लों का संश्लेषण, अजीव तथा ज्यजीव यौगिकों की रचना का समझाना और द्व्यजीव यौगिकों का अजीवों में परिवर्तन सब इसी महापुरुष के मस्तिष्क का प्रसाद है।

केक्यूले ने घेन्ट में ही अपनी विश्वविख्यात पुस्तक (*Chemical*) का बहुत कुछ भाग लिखा जिसमें उसने अपने दोनों पिछान्तों का भिन्न भिन्न प्रकार के उदाहरणों से समर्थन किया, यह पुस्तक कार्बनिक रसायन की अमृत्यु सम्पत्ति ख्याल की जाती है।

१८६७ ई० में केक्यूले को वॉन विश्वविद्यालय में मुख्य रसायनार्थी के पद पर नियुक्त किया गया। यहां पर कार्य करने का घेन्ट से अधिक सुभीता था और अधिक विद्यार्थी भी रक्खे जा सकत थे। इसके मुख्य विद्यार्थियों के नाम निम्न लिखित हैं:— वेडमन, वन्थर्सन, क्लेसन, डिटमार और वाएट हाक इत्यादि।

केक्यूले का स्वास्थ्य पिछले दिनों में कुछ बिगड़ गया परन्तु इतने पर भी उसके मस्तिष्क की शक्ति और तीक्ष्णता में कोई अन्तर नहीं पड़ा। यद्यपि केक्यूले को विचार-शक्ति बहुत बढ़ी चढ़ी थी परन्तु जैसा कि कभी कभी होता है उसकी समझने तथा प्रयोग करने की शक्ति भी किसी प्रकार कम न थी

और सर्वदा उसके साधारण व्याख्यानो में प्रयोगों की भरमार रहती थी। व्याख्यान की स्पष्टता, प्रयोगों की सफलता तथा सुन्दरता से केक्यूले की व्याख्यान-शाला सर्वदा नीचे से ऊपर तक भीड़ से डटी रहती थी। अनुपम्यानिक्त प्रयोगशाला में केक्यूले की रीति बहुत से आचार्यों के दिलकुल विरुद्ध थी। वह स्वयं विद्यार्थियों को अधिक नहीं बताता था ताकि वह अन्य विश्वाससे उसके कहने को ही न करते रहें बल्कि उनकी विचार शक्ति चतुरता तथा स्वयं विचार शक्तिके लिए अधिक जोर देता था। इस प्रकार से आजकल और कम से कम भारतवर्ष में तो बहुत ही कम शिक्षा दी जाती है।

केक्यूले उदार चित्त, दयावान, तथा विचार शील होते हुए भी बड़ा रसिक था और अपने शिष्यों में अधिक से अधिक समय रहना उनके मनमें बड़े सन्तोष का कारण था। यद्यपि आज केक्यूले जीवित नहीं परन्तु उसका पौधा जिसको उसने बोया था उसके शिष्यों तथा अन्य वैज्ञानिकों के परिश्रम द्वारा फल फूल रहा है और यही महापुरुष का सबसे बड़ा लक्षण है कि उसका कार्य उसके मृत्यु-उपरान्त उसके जीवनकाल से अधिक प्रसिद्ध हो। केक्यूले के बिना कार्बनिक रसायन उतनी ही अपूरी होती जितनी पास्ट्यूर के बिना कोटाणु विज्ञान। भिन्न भिन्न सम्भावना का सदस्य होने के अतिरिक्त केक्यूले को अनेक पदक मिले जैसे रायल सोसाइटी का कोपले पदक, केमिकल सोसाइटी लन्दन का कैंगेडे पदक इत्यादि। १८८९ ई० में यह महान व्यक्ति इस संसार से सर्वदा के लिये छोन लिया गया।

कोलतार रंग—रसायन का प्रारम्भ तथा हाफमैन और उसके शिष्यों के अनुसन्धान ।

एसा कोई विरला ही होगा जिसने कोलतार देखा न हो या कमसे कम नाम न सुना हो । कम से कम बड़े बड़े शहरों में तो इसका कुछ भाग सड़कों के बनानेमें लगाया जाता है परन्तु क्या कोई यह भी जानता है कि हमारे रंग विरङ्गे कपड़ों के रङ्ग का स्रोत भी यही है । वैसे तो इसमें बड़ी भयानक बू आती है जो कम से कम अच्छी तो किसी को भी न लगती होगी परन्तु यदि गूढ़ दृष्टि से देखा जाय तो हमारे केवल रंगोंका ही नहीं, और भी बहुत से पदार्थोंका यह कारण है । इन कुछ पृष्ठोंमें कोलतार विषय पर कुछ कहा जायगा तथा यह भी दिखाया जायगा कि किस प्रकार कोलतार के भिन्न भिन्न पदार्थों से रङ्ग बनाये जाने लगे ।

कोलतार व्यवसाय की कहानी बड़ी अद्भुत और काफी पुरानी है । इसके प्रारम्भिक इतिहास का पता लगाने के लिये हमें १८२५ ई० पर जब कि अमर फ़ैरेडे ने बानजावीन का अन्वेषण किया, दृष्टि डालनी चाहिये । जहां तक कि पता लगाया जा सकता है, बानजावीन के विषय में यह ही सर्व प्रथम अनुसन्धान प्रतीत होता है और यहीं से इस व्यवसाय की नींव पड़ती है । १८२६ ई० में उनवर-डोरवेन ने नील के स्रवण से नीलिन् प्राप्त की और इस के कुछ ही दिन पश्चात् रंगों ने कोलतार में नीलिन् की उपस्थिति सिद्ध की और साथ ही साथ खटिक हरिन् के प्रभाव से एक कासनी नीला रङ्ग प्राप्त करने पर इसका नाम “क्यानोल” रक्खा । फ़िजे ने नील से यही पदार्थ क्षार के साथ स्रवण करके प्राप्त किया । इस विषयमें मिटगरलिकने जिसका समपरिवर्तन सिद्धान्त जगत विख्यात है, बानजावीन बानजाविकान्त के स्रवण से तैय्यार की और साथ

ही साथ इससे नोबो-बानजावीन बनाने की विधि भी निकाली ।

इन अनुसन्धानों के वर्णन के पश्चात् हाफमैन के कार्य्यों का समय आता है । हाफमैन को नीलिन् से कितना प्रेम था यह कुछ सीमातक उसके शब्दों से पता लगा सकते हैं:—“नीलिन् मेरी प्रथम प्रेमिका है” । हाफमैनने सबसे पहिले लेखमें यह सिद्ध किया कि रंगों, उनवरडोरवेन, फ़िजे इत्यादि का पदार्थ एक ही वस्तु है और उसमे कोई भी भेद नहीं ।

१८४३ ई० तक कार्बनिक रसायन केवल प्रारम्भिक दशा ही में थी और कोलतार नपथा पर पूरे तौर से ज्ञान प्राप्त नहीं किया गया था । हाँ हँगे कवोलिकाम्ल, प्रभोल, नीलिन् तथा कुनोलिन् को अवश्य पृथक् कर चुका था परन्तु नपथालेन का कोलतार में होना गारडन (१८२०) के अनुसन्धानों से भ्रमों भांति विदित हो चुका था । इसी प्रकार डूमा तथा लोरेन् ने पर-नपथालेन, अगारिन् तथा पाइरीन इत्यादि की भी उपस्थिति पर अपने विचार प्रगट किये थे । हाफमैन के समय तक इस से अधिक जानने का कोई पता नहीं मिलता है । १८४९ ई० में उसने सबसे पहिले बानजावीन की नपथा में उपस्थिति होने की सम्भावना प्रगट की जिसका प्रयोगिक प्रमाण हाफमैन के शिष्य मैन्सफील्ड ने इसके कुछ ही दिनों पश्चात् बानजावीन को नपथा से पृथक् करके दिया । जो कोई भी आंशिक स्रवण से कार्य्य कर चुका है इस बात को भली भांति जान सकता है कि मैन्सफील्ड ने कितनी चतुराई और धैर्य के साथ इन पदार्थों का नपथा से पृथक् किया होगा । रायल कालेज में आने के थोड़े ही दिनों पश्चात् हाफमैन ने कार्बनिक वाष्पीय क्षारों के ना उ, समूह के उद्जन परमाणुओं के मशील मूलों से स्थापित करके यौगिक तैयार किये और साथ ही साथ अमोनियम यौगिक भी । यद्यपि इन विधियों का कोलतार रंग व्यवसाय से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है तब भी इनसे इस व्यवसाय के अधिक लाभ पहुँचा है । इस थोड़े से वर्णन से तुरन्त ही यह पता

लग जायेगा कि किस प्रकार हाफमैन की प्रयोगशाला में भविष्य व्यवसाय के लिये शनैः शनैः उन्नति हो रही थी और वास्तव में कोई विशेष सन्देह नहीं कि मैन्सफील्ड के कार्य के बिना कोलतार का एक व्यवसाय हो जाना यदि अमम्भव नहीं तो कठिन अवश्य ही होता ।

इस समय ही विश्व विख्यात रसायनज्ञ सर विलियम हेनरी परकिन (प्रथम) जिसको कोलतार रंग व्यवसाय का जन्म दाता कहा जाता है हाफमैन की प्रयोगशाला में केवल १५ वर्ष की आयु पर ही भर्ती हुआ । भाग्यवश इस समय कार्बनिक वस्तुओं का प्रयोगशाला में मंश्लपण करने की प्रत्येक रसायनज्ञ को धुन सवार थी । यद्यपि उस समय की रीतियाँ और विधियाँ वर्तमान विधियों से भिन्न तथा खराब थीं तब भी हाफमैन ने इस विषय में अद्भुत कार्य करके जगत् को अपनी चतुराई का प्रमाण दिया । १८४८ ई० में हाफमैन ने नफथलिन को बहुत सी रसायनिक विधियों के प्रभाव के पश्चात् कुनिन में परिवर्तित किया था परन्तु इस प्रक्रिया के समझाने में उसे कोई विशेष सफलता प्राप्त न हो सकी । परकिन को भी इस कार्य के सम्भालने की लालसा हुई और इस पर सोचना आरम्भ कर दिया । इस पर सोचते सोचते परकिन को ध्यान आया कि यदि टोस्विदिन में एक उद्जन परमाणु के बजाय एलॉल मूल स्थापित कर दिया जाय तो एलॉल टोस्विदिन बनेगा और इस में दो उद्जन परमाणु निकाल कर और दो खोपजन परमाणु मिला कर कुनिन प्राप्त हो सकती है ।

२ (क. ०. उ. १. नो) + ३ओ = क. ०. उ. १. नो. ओ. +

उ. ओ

परकिनने एलॉल टोस्विदिन बनाकर उसपर पांशुज द्विरागेत का प्रभाव देखना चाहा परन्तु कुनिन प्राप्त होनेके बजाय एक भरी लाल तथा भूरी सी वस्तु प्राप्त हुई । परकिन को ऐसे फल मिलने से बिस्कुल भी खेद न हुआ जैसा कि कभी कभी नवयुवकों को

अपेक्ष्य के कारण हो जाया करता है परन्तु इसके विरुद्ध उसने और दुगुनी शीघ्रता और परिश्रम से कार्य आरम्भ कर दिया । दूसरी बार नीलिन जो कि पहले चार से कहीं साधारण है प्रयोगों के लिये चुना गया परन्तु इस बार एक काली सी वस्तु प्राप्त हुई जिसकी छान बिन करने पर विदित हुआ कि इसमें प्रसिद्ध रङ्ग मावे अर्थात् रंग नीलिन नील-लोहित भी मिला हुआ है । इस अन्वेषण के कुछ ही दिन पश्चात् परकिन ने यह भी विदित किया कि इस वस्तु में रंगों की भाँति कपड़े से चिपटने की शक्ति भी काफी तीव्र है और सबसे महत्व की बात तो यह है कि सूर्य प्रकाश का इस पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता ।

इस रंग को प्राप्त करने पर परकिन के मित्रों ने अनुमति दी कि इस रंगको व्यवसाय के लिये तैयार करनेकी चेष्टा की जाय । १८५६ ई० की जून में यूलर कम्पनी के कर्मचारियों ने परकिन के भेजे हुये नमूनों की बहुत कुछ प्रशंसा की तथा यह भी लिखा कि यदि आपके इस रङ्ग का व्यय अधिक न हो तो हम लोग इस को खरीद सकते हैं । अब यदि का उत्तर देना परकिन के लिये इतना सहल न था तब भी उसने २६ अगस्त सन् १८५६ ई० को सर्वप्रथम ऐसे रङ्ग का जो प्रयोगशाला में बनाया गया हो पेटेण्ट लिया अर्थात् इसी समय से प्रयोगशाला में और पदार्थों के अतिरिक्त रङ्ग बनाने की लालमा सब के हृदयों में स्थान पाने लगी । पाठकों को अब विदित हो गया होगा कि किस प्रकार हाफमैन की प्रयोगशाला में इस नये व्यवसायकी नींव उसके सुशिष्य परकिन के हाथों से पड़ी । परकिन ने यह रीति तो अवश्य निकाल ली परन्तु नीलिन का कम मूल्य में प्राप्त होना भी एक दूसरी कठिन समस्या थी क्योंकि उस समय तक नीलिन केवल नील से ही प्राप्त हो सकती थी और नील स्वयं ही रंगकी तरह प्रयोग किया जाता था । खैर परकिन अपने इस अन्वेषण के विषय में बातचीत करनेके लिए गुरु हाफमैनके पास गया, परन्तु हाफमैन को यह सुनकर कि उसका ऐसा अच्छा शिष्य

कालेज छोड़ कर व्यवसायके भगड़ों में पड़ना चाहता है कुछ दुःख हुआ और परकिन के साथ क्रुद्ध भी हुआ क्योंकि वह जानता था कि नीलिन् न मिलने से यह व्यवसाय पैरों नहीं चल सकता और मुक्त में परकिन के भविष्य पर पानी फिर जायगा। पाठकों को याद रहे कि हाफमैन परकिन से इस कारण से क्रुद्ध नहीं हुआ था कि व्यवसाय से उसका शिष्य धनाढ्य हो जायगा; नहीं, उसको तो सर्वदा अपने शिष्यों का लाभ एक सबसे बड़ी प्रसन्नता थी, बल्कि यही कि ऐसा करनेसे न तो व्यवसाय ही चलेगा और न परकिन अपना नाम भांति भांति के अनुसन्धानही करके प्रसिद्ध कर सकेगा। तब परकिन ने हाफमैन के कहने के विरुद्ध कालेज छोड़ही दिया और अपने व्यवसायकी उन्नति की विधियाँ सोचने लगा। यद्यपि यह सब का ही मत है कि गुरु की आज्ञा सर्वदा ही शिष्यों को सिरमौर रखनी चाहिये परन्तु कभी कभी इसके विरुद्ध भी देखा गया है जैसा कि परकिन के विषयमें। यदि परकिन कालेज छोड़कर न चला जाता तो शायद इतने बड़े वैज्ञानिकोंमें उसकी गिनती न होती और न प्रयोगशालामें रङ्ग बनानेकाही शौक बढ़ता परन्तु जब देखा कि परकिनके बनाये हुए रंग बाजारमें खूब विकने लगे तो इसके कुछही दिन पश्चात् सैकड़ों नये नये रङ्गों के पेटेंट सुरक्षित किये गये। कहनेका तात्पर्य यह है कि इसी १८ वर्षके बालकने जगत् एक नई और आकर्षित किया और यह उसीके परिश्रम और भावका फल है कि आजकल प्रत्येक रंग प्रयोग-शालाओंकी सन्श्लेषित विधियोंसे बनता है और बहुत सी धरती जिसमें पदार्थ देने वाले पोषे उगाये जाते थे जैसे नील, मंजीठ अनाज उगाने के कार्य में लाई जाती है। यह और भी आश्चर्य की बात है कि उस समय परकिन की अवस्था केवल १८ ही वर्ष की थी।

इस समय तक नोपो-वानजावीनसे नीलिन् बनाने की विधि भी ज्ञात नहीं थी। वेश्प ने इसी समय लोहे और सिरकाम्ल से नोपोवानजावीन को नीलिन् में परिवर्तित करके इस कार्य को सफल कर

दिया परन्तु तब भी अधिक मात्रा में नीलिन् बनानेके लिये खास यन्त्रों की आवश्यकता थी। इन सब बाधाओं पर विजय पाकर १८५७ ई० में कीथ कम्पनी के रङ्गालय में इस रंग का सबसे पहल प्रयोग किया गया। इस रंग के बनने से लोग इतने उत्साहित हुए कि तुरन्त ही फ्रांस इत्यादि देशों में भिन्न भिन्न औषधीकारक वस्तुयें प्रयोग की जाने लगी।

इसके तीन वर्ष पश्चात् १८५९ ई० में वरक्विनने फुक्सिन तथा हाफमैनने रोजनीलिन तैयारकीं। यद्यपि वरक्विनका रंग सूर्य प्रकाशके प्रभावका इतना नहीं सम्भाल सकता था जितना कि मावे परन्तु इसके चट-कीले और चमकीले स्वभावन इसके प्रयोगका औरभी बड़ा दिया और यदि वास्तवमें देखा जाय तो कालतार रङ्गों में सबसे अधिक सफल मजेष्टा अर्थात् फुक्सिन ही सिद्ध हुई है। मजेष्टा का वरक्विन् ने वंगचतुर्-हरिद को नीलिन् के साथ गरम करने से तैयार किया था परन्तु सबसे उत्तम विधि पारद नोपतसे गर्म करने की प्रतीत हुई है। इस कालतार रंग व्यवसाय रूपी महल की दूसरी ईंट एक फ्रांसीसी के हाथ से रखी गई।

क्योंकि मावे की मांग प्रति दिन बढ़ती जाती थी इसलिये नीलिन् को कम व्यय पर बनाने के उपाय बहुत से वैज्ञानिक सोचने लगे और वास्तव में १८५८ ई० में हाफमैन के एक दूसरे शिष्य निकोल्सन ने इस बाधा को भी दूर कर दिया और प्राइस, सिममन इत्यादि लोगों के सहयोग से रंग बनाने का एक बड़ा भारी कारखाना खोल दिया जिसमें वह लांग फुक्सिन बनाने की चेष्टा करने लगे।

१८६० ई० में हाफमैन के ही शिष्य मैडलाक ने एक दूसरा पेटेंट सुरक्षित किया जिसमें मजेष्टा का बनाने की विधि वंग चतुर्हरिदसे गरम करनेके वजाय संच्छीणसाम्ल के साथ गरम करनेकी थी। निकोल्सन इत्यादि के हाथों में संच्छीणसाम्ल विधि का काफी सफलता प्राप्त हुई पर अन्त में यह भी नोपो-वानजावीन के प्रयोग से स्थगित कर दी गई।

इन रँगों के गठन के विषय में बहुत से विचार

प्रगट किये जा चुके थे परन्तु निकोलसन के पदार्थों पर प्रयोग करके हाफमैन ने यह स्पष्टतया दिखला दिया कि फुक्सिन एक त्रिआमिन चार है जिमका नाम रोजनीलिन् रक्खा और इस चार के भिन्न भिन्न लवण भी तैयार किये । हाफमैन ने टुकेनीलिन् पदार्थ भी प्राप्त किया जो कि लगभग सब ही त्रिदिव्यील दारेन रँगों में उपस्थित है । इस अनुसंधान का महत्व समझना भी एक कठिन सी बात है क्योंकि आजकल तो हम इन रँगों के विषय में काफी ज्ञान रखते हैं परन्तु उस समय में जब कि इस विषय का कुछ भी ज्ञान न था यह अनुसंधान अवश्य ही अति लाभदायक प्रतीत हुआ होगा ।

रँगों के बनाने वालों को यह बात प्रतीत होने में अधिक देर न लगी कि ऊँचे वक्थनांक की नीलिन् से रोजनीलिन् बनाना अति सहल है और बहुत से नमूनों से कुछ थोड़ा ही सा रँग बनता है । निकोलसन पहिले यह विदितकर चुका था कि शुद्ध नीलिन् से रोजनीलिन् बनना लगभग असम्भव है । हाफमैन ने नील तथा बानजाबीन दोनोंसे बनी हुई नीलिन् से पृथक् पृथक् प्रयोग किये और उनको भी निकोलसन की भाँत रोजनीलिन् बनाने में असफलता प्राप्त हुई । इस अनुसंधान से यह प्रतीत होने लगा कि शायद यह रँग कालतार से बनी हुई नीलिन् में टोस्विदिन जैसे अशुद्ध पदार्थों से बनता हो परन्तु टोस्विदिन से भी इस रँग को प्राप्त करने में नीलिन्से अधिक सफलता प्राप्त न हुई । अन्त में हाफमैन ने इन दोनों का मिश्रण लेकर प्रयोग किया और इस बार सफलता की देवी को दर्शन हुये । इस प्रकार पाठक देखेगे कि यद्यपि हाफमैन ने स्वयं इस व्यवसाय में कोई विशेष भाग नहीं लिया अथवा कोई कारखाना इत्यादि न खोला परँतु उसके सब अनुसंधान इसी विषय पर होते थे और प्रत्येक रूप से इस की वृद्धि का कारण हुये ।

इस समय तक इस व्यवसाय का विस्तार काफी बढ़ चुका था और न केवल इंग्लैंड में ही बल्कि फ्रांस तथा जर्मनी में भी नये नये कारखाने खोले जाने

लगे थे । साथ ही साथ रँगों की संख्या भी बढ़ती जा रही थी, गिरार्ड तथा डिलेयर ने “इम्पीरियल वायलेट” तथा “ब्लू डे लियो” नीलिन् को फुक्सिन के साथ गरम करके प्राप्त किये थे ।

इन्ही कार्यों के होने में हाफमैन को एक नई बातका पता लगा । १८५० में उसने नीलिन्के नो ३ समूह के उदजन परमाणुओं को दिव्यील मूलसे स्थापित करने की चेष्टा नीलिन् को दिव्यील के साथ गरम करके की थी, परँतु इसमें विशेष सफलता प्राप्त न हो सकी परँतु जब यह पता लग गया कि रोजनीलिन् के साथ गरम करने से रँग दिव्येत हो जाता है हाफमैनकी खुशीका ठिकाना न रहा और इसके पश्चात् यह जानने पर कि “ब्लू डे लियो” त्रिदिव्यील रोजनीलिन् है उसको खुशों की सीमा न रही और तुरंत ही फ्रांसीसी अकैडेमी को १८ मई १८६३ ई० को इस विषय पर एक तार द्वारा अपने प्रयोगों का समाचार भेजा । इस पर पूरा लेख जुलाई १८६३ ई० की बैठक में पढ़ा गया जिसमें निकोलसन की प्रशंसा निम्न लिखित शब्दों में की है:—“निकोलसन में एक व्यवसायिक तथा वैज्ञानिक अन्वेषक की शक्तियाँ अद्भुत रूप में उपस्थित हैं” ।

दिव्येतरण का महत्व डिलेयर, गिरार्ड तथा चैपेट्यू के हाथों में इतना बढ़ गया कि नीलिन् के उदजन परमाणुओं को दिव्यील से स्थापित करने की एक नई और अद्भुत रीति हो मिल गई, वह थी केवल नीलिन् उदहरिद को गरम करने की

क० ३, नो ३, उ ह + ह उ, नो ३, क० ३, —

नो ३, ह + (क० ३), नो ३, उ ह

परन्तु नीलिन् ब्लू के प्रयोग करनेमें एक और सब से बड़ी बाधा खड़ी हो गई क्योंकि यह वस्तु पानी में शीघ्र घुलती न थी । इसलिये इसका प्रयोग भी कठिन होता गया परँतु निकोलसन को बिना इस के प्रयोग में लाने योग्य बनाये चैन कहाँ था । भिन्न भिन्न प्रयोग करके अन्त में उसे विधि हाथ ही लग गई और वह भी रँग को गन्धकाम्ल के साथ गरम करने की जिससे रँग के गन्धोनिकास बन जायें ।

इस प्रकार दो गन्धोनिक्ताम्ल मिले अर्थात् इक (निको-त्सनव्यू) और त्रि (साल्यूबिल व्यू) । यह केवल इसी अनुसन्धान की महिमा है कि यह नीलिन् व्यू अथवा त्रि-दिव्यील रोजनीलिन् उपयोगी हो सके। केवल यह ही नहीं कि इस रँग के लिये ही यह विधि उपयोगी हुई बल्कि कम घुलनशील रँगों को घुलन-शील बनाने तथा नीलिन् रँगों के गन्धोनिकरण का एक नया रास्ता खुल गया ।

हाफमैन को इन रँगों पर कार्य करने का इतना शौक बढ़ गया कि जहाँ तक भी हो सका उसने लग भग सब ही रसोंका प्रभाव इन रँगों पर अध्य-यन करना आरम्भ कर दिया। सब से पहिले उसने रोजनीलिन् पर मशील हरिदों का प्रभाव देखना आरम्भ किया। वस अब तो नाना प्रकार के रँगों की वर्षा सी होत लगी। रोजनीलिन् के ना उ, समूह के उद्जन परमाणुओं को मशील मूलों से स्थापित करने से नीले रँग की विद्यमानता हाने लगी अथवा गुलाबी रँग के बजाय कासनी रँग मिलने लगा ।

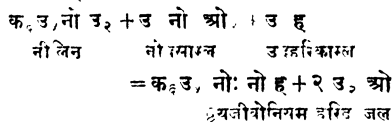
और इस प्रकार एकके बाद और उद्जन परमाणु मशील मूलों से स्थापित करने मे अन्त में कई प्रकार के कासनी रँग मिले जो “हाफमैन वायलेट” के नाम से प्रसिद्ध है। इन रँगों का पेटेण्ट २२ मई १८६३ में लिया गया ।

जिस समय हाफमैन ने इन रँगों को तैयार किया था किसी को भी इस बात का ध्यान न था कि ऐसी वस्तुयें भी जो प्रयोगशाला में भी बनाने पर काफी महंगी पड़ती है व्यवसाय के योग्य हो सकेगी। परन्तु हाफमैन के रँग उस समय के सब रँगों से गहरे और चमकीले थे। यद्यपि इतने स्थायी तो नहीं थे जैसे कि मावे या इम्पीरियल वायलेट, तब भी उनके लिए मांग बढ़ती ही गई। दिव्यील तथा मशील मूलों के स्थापन का उस समय ऐसा प्रभाव पड़ा कि लगभग सब ही मूलों के स्थापन का प्रभाव जानना एक लालसा सी हो गई। हाफमैन का इक्कलैड में सब से अन्तिम कार्य “चिनोलीन व्यू”

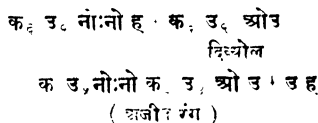
पर हुआ। इस वस्तु को प्रीवेली विलियम पहिले ही ज्ञात कर चुका था, परन्तु भाग्यवश इस यौगिक का स्वभाव बड़ा ही चंचल था और सूर्य प्रकाश में रखते ही इसका रँग कम होता जाता था ।

जब एक बार कोई कार्य आरम्भ हो जाता है तो बहुत से लोग उसमें भाग लेने लगते हैं। हाफमैन तथा उसके शिष्यों के कार्य का ऐसा गूढ़ प्रभाव पड़ा कि दस ही वर्ष के भीतर जहाँ तहाँ सब देशों में भिन्न भिन्न रँगों को बनाने के लिये नये नये कारखाने खुल गये और बहुत से रसायनज्ञ उनमें नये रँगों की खोज के लिये जुट गये। हाफमैन के शिष्यों को छोड़कर उसी की प्रयोगशाला में एक व्यक्ति ने ऐसी अद्भुत रसायनिक प्रक्रिया विदित की जिसके प्रयोग से आधे से अधिक संश्लेषित रँग तैयार किये गये हैं। इस व्यक्ति का नाम था पोटर ग्रीस जो यद्यपि हाफमैन का शिष्य नहीं था परन्तु उसी की अध्यक्षता में कार्य करता था। ग्रीस ने रायल कालेज में कार्य करते समय विख्यात “द्व्यजीव प्रक्रिया” विदित की। उस समय तक सुरभिक अमिनो पर नोपसाम्ल के प्रभाव से मशों की ही उत्पत्ति विदित थी परन्तु ग्रीस ने १८६० ई० के लगभग दिखलाया कि यदि साधारण तापक्रम के बजाय बर्फ के तापक्रम पर यही प्रक्रिया की जाय तो एक नये रँग का यौगिक बनता है जिनका नाम द्व्यजीव यौगिक रक्खा गया। इसके कुछ ही दिनों परचाय विदित हुआ कि इस प्रकार जो यौगिक बनते हैं उनके स्वभाव अमानियम यौगिकों से बहुत मिलते जुलते हैं इस लिये इनका नाम अमानियम से मिलता जुलता द्व्यजीवोनियम यौगिक पड़ा। परन्तु यह यौगिक स्वयं रँग की भांति प्रयोग नहीं किये जाते बल्कि इनके साथ और यौगिक मिला कर रँग बनाये जाते हैं। आजकल तो इस प्रकार बने हुये रँगों की संख्या लाखों से भी अधिक हो गई और इन सबको “अजीव रँग” का नाम दिया गया है। इस प्रक्रिया का महत्व भले प्रकार समझने के लिये नीचे समीकरणके रूपमें इसे दिख-

लाया जाता है ।



यह प्रक्रिया कार्बनिक रसायन में बिल्कुल एक साधारण प्रक्रिया हो गई है । लग भग सभी सुरभिक यौगिक जिनमें नो. उ. समूह होता है इस प्रकार के यौगिक देते हैं ।



अजीव रंगों का मुख्य समूह नो. नो. होता है । बिना इस समूह के कोई अजीव रंग नहीं बन सकता । इसी द्व्यजीवोनियम प्रक्रिया की सहायता से इतने यौगिक बनाये गये हैं कि उनका केवल नाम ही लिखने के लिये एक पुस्तक चाहिये ।

इसके पश्चात् रंग रसायन में एक बिल्कुल नया अध्याय ही १८६८ ई० में ग्रैबे तथा लिबेरमैन के अनुसन्धानों से खुला जिन्होंने अंगारिन से मज्जिष्टिन प्राप्त की । इनकी विधि या तो अंगारकुनोन को अरुग्निन के साथ बन्द नलियों में गरम करने की थी या चतुरअरुग्णों अंगारिन के आपदी करण से । इस रंग के व्यवसाय के लिये अंगारिन का काफी मात्रा और कम दामों में मिलना आवश्यक था क्योंकि यह रंग पहिले ही से मंजीठ के पौधे से निकाला जाता था और इसके साथ मुकाबला करना कोई सहल काम न था परन्तु परिश्रमी लोग कब कार्यको छोड़ते हैं । अन्तको इसमें भी सफलता प्राप्त हुई ।

एक बिल्कुल नया समूह नवीन रंगों का इसी समय विदित हुआ जिसमें फ्लोरेसिन, इओसिन इत्यादि जैसे रंग हैं । यह प्रक्रिया यद्यपि पहिले पहल थलिकाम्ल तथा रेशेनोल को गरम करने से विदित हुई थी जिसमें फ्लोरेसीन बनती है परन्तु

द्व्यजीव प्रक्रिया की भांति यह भी कार्बनिक रसायन की एक साधारण प्रक्रियाओं में हो गई है और द्विचारीक कार्बनिक अम्लों के पहचान की मुख्य विधि है क्योंकि लगभग सभी द्विचारीक कार्बनिक अम्लों से रेशेनोल के साथ गरम करने से रंग बनता है । इन रंगों में एक और बात है कि यह सब चमक वाले होते हैं ।

यद्यपि वायर के कार्य का हाफमैन के शिष्यों से कोई सम्बन्ध नहीं है परन्तु तब भी इसका वर्णन यहां कुछ आवश्यक प्रतीत होता है । वायर ने नील का संश्लेषण किया और जो एक प्रकार के पौधे से निकाला जाता है परन्तु आजकल नकली नील के दाम अमली नील से कई गुने कम हैं । ऊपर दिये हुये अनुसन्धान कोलतार रंग व्यवसाय का न्यूनतम भाग हैं और केवल उसके आरम्भ होने की दशा ही दिखलाते हैं । यह कह देना ही काफी है कि आजकल लगभग सब रंग प्रयोग-शालाओं की विधियों से ही बने हुये प्रयोग किये जाते हैं । पाठक भलीभांति जानते हैं कि कोलतार के ही स्वर्ण से बानजावीन, नफथलिन, अंगारिन तथा दिव्योल इत्यादि पदार्थ जो इन रंगों के बनाने में प्रयोग किये जाते हैं प्राप्त किये जाते हैं । इसीलिये इन रङ्गों को कोलतार रंग कहा जाता है । इस छोटे से लेख के पढ़ने से पाठकों को कोलतार और उसके उपयोगों का महत्व प्रतीत हो जायगा । यदि वास्तव में देखा जाय तो कोलतार से कम से कम हमारे व्यवसायिक जीवन में बड़ा ही परिवर्तन हो गया है । आजकल जर्मनी वाले रंग के व्यवसाय को एक प्रकार से अपनाये ही हुये हैं । इसका कारण है कोलतार की अधिकता तथा उसका प्रयोग । वास्तव में इस व्यवसाय की नींव हाफमैन के ही कार्य से पड़ी क्योंकि वह सर्वदा नीलिन के ऊपर ही किसी न किसी विषय के सम्बन्ध में कार्य करता था । यह तो हाफमैन के कार्यों में से केवल एक भाग है । अगले कुछ पृष्ठों में हाफमैन तथा उसके सुशिष्य परकिन के कुछ और अनुसन्धान दिये जायेंगे ।

अगास्ट विलहेल्म हाफमैन

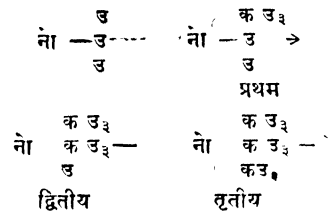
(१८१८—१८६२)

हाफमैन का जन्म गीसेन में १८१८ ई० में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा पाने के पश्चात् १८३६ ई० में हाफमैन गीसेन विश्वविद्यालय में वकालत पढ़ने के अभिप्राय से गया परन्तु क्या जहाँ लीविग जैसे महर्षि हों वहाँ से क्या हाफमैन वकील बन कर जा सकता था। यह पहिले कई बार बताया जा चुका है कि लीविग ने बहुत से ऐसे विद्यार्थियों को जो वकालत, साहित्य इत्यादि पढ़ने के अभिप्राय से गीसेन आते थे रसायन के पुजारियों में परिवर्तन कर दिया। केवल यह ही नहीं कि यह नवयुवक रसायन सीख कर छोटे छोटे स्कूलों में पढ़ाने में जीवन बिताते रहे हों, नहीं सब के सब भावी रसायन के निर्माता हुये, उदाहरणतः हाफमैन, केक्यूले तथा विलियमसन इत्यादि। १८४१ ई० में डाक्टर की पदवी पाकर हाफमैन लीविग के साथ कार्य करता रहा और १८४३ ई० में बोन विश्वविद्यालय में सहकारी के पद पर नियुक्त किया गया। लीविग की जीवनी लिखते समय यह बतलाया गया था कि किस प्रकार उसके प्रभाव से महाराणी विक्टोरिया के समय में इंग्लैंड के रायल कालेज की स्थापना हुई। राजकुमार कनसर्ट की यह इच्छा हुई कि नये कालेज का प्रधान अध्यापक कोई ऐसा व्यक्ति होना चाहिये जिसका लीविग के साथ अधिकतर सम्बन्ध रहा हो। बहुत सोच विचार के साथ लीविग ने हाफमैन को जो उस समय बोन विश्वविद्यालय में था इस पद पर नियुक्त किया, और वास्तव में हाफमैन चाहता भी था, बस विल्ली के भागों छीका टूट पड़ा।

हाफमैन का सब से प्रथम रसायनिक अनुसन्धान कोलतार के पदार्थों पर हुआ जिस पर उसको डाक्टर की उपाधि मिली। इस समय उसका विशेष कार्य कोलतार में वानजावीन तथा और वस्तुओं की खोज करना था तथा उसने यह भी दिखलाया कि रुँगे, जिन तथा उनवरडोरवेन के पदार्थ एक ही वस्तु अथवा वानजावीन हैं। इसके पश्चात् उसने

नीलिन पर बहुत कुछ क्या सारी आयु भर ही कार्य किया।

प्रारम्भिक कार्य में ही हाफमैन ने अमिनो की ओर अधिक रुचि प्रगट की और इस के वाद ही उस का महत्व पूर्ण कार्य मज्जिक अमिनो पर हुआ जिससे गरहर्ड के सिद्धान्त को बहुत ही सहायता मिली। अमिनो के बनाने की दो मुख्य विधियाँ हाफमैन के नाम से प्रसिद्ध हैं। यदि मद्यील हरिदों को अमोनिया के साथ किसी बन्द नली में गरम किया जाय तो तीनों प्रकार के अमिन अथवा प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय अमिन बनते हैं। इस प्रयोग से सिद्ध हुआ कि अमोनिया का एक उद्जन परमाणु क्या, तीनों एक एक के पश्चात् शनैः शनैः मद्यील मूलों से स्थापित किये जा सकते हैं और इस प्रकार अमोनिया रूप की महत्ता और भी बढ़ गई।



हाफमैन की अमिन बनाने की दूसरी विधि अमिदो को अरुणिन तथा पांगुज उदऔपिद के साथ गरम करने की थी। अब यह विधि लगभग प्रत्येक अमिन के बनाने में प्रयोग की जाती है। इस प्रकार हाफमैन ने रूप सिद्धान्त के विषय में भी काफी अच्छा कार्य किया। इसका पूर्ण वृत्तान्त रूप सिद्धान्तके अध्याय में दिया जा चुका है।

इंग्लैंड के नये कालेज में जाकर हाफमैन को बहुत सी कठिनाइयाँ का सामना करना पड़ा क्योंकि उस समय इसकी नई स्थापना ही हुई थी और उसको प्रयोगशाला के बनाने तथा सामान इत्यादि सब की ही देख भाल करनी पड़ती थी जिनमें काफी समय व्यतीत हो जाता था।

१८४५ ई० में हाफमैन ने नील के अन्तःपरिवर्तन (Metamorphosis) पर एक महत्व पूर्ण लेख लीविग की पत्रिका में छपवाया तथा इसके साथ उन कार्बनिक चारोंका भी जिनमें हरिन् तथा अरुणिन होती वणोन किया। यह कार्य रसायन के इतिहासमें एक बड़ी ही उत्तम तथा प्रसिद्ध बातोंमें समझा जाता है और ऐसे समय यह कार्य हुआ जब कि बरजेल्यूस के युगल सिद्धान्त तथा स्थापन सिद्धान्त में घोर समालोचना छिड़ी हुई थी। उस समय ऐसा कोई कार्बनिक चार विदित न था जिसमें ना०, समूह में उद्जन परमाणु हरिन् अथवा अरुणिन से स्थापित किया गया हो और साथ ही साथ इस स्थापन से चार के स्वभावों में कोई अन्तर न उत्पन्न हुआ हो। हाफमैन ने बड़ी गम्भीरता के साथ कहा कि इस कार्य से हरिन् जैसे ऋणात्मक तत्व से धनात्मक वस्तुओं में स्थापित किया करने से स्वभाव में कोई अन्तर न होने का बड़ा सुन्दर प्रमाण मिलता है। उसने इस कार्य को यहाँ नहीं छोड़ा बल्कि तुरन्त नीलिन् के हरिनीकरण पर कार्य आरम्भ कर दिया। यद्यपि आरम्भ में इस में कुछ कठिनाई हुई परन्तु अन्त में हाफमैन ने अपने परिश्रम तथा चतुराई से इस कार्यको समाप्त किया और यहही नहीं बल्कि अंगारानीलिकाम्ल का भी हरिनीकरण किया। जिन जिन चतुराईयों तथा युक्तियों से हाफमैन ने इस कार्य को उस समय में जबकि कार्बनिक रसायन प्रारम्भिक दशा ही में था इस सफलता तक पहुँचाया उनका अनुमान लगाना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। साथ ही साथ उसके कथनको तो देखिये कितना सत्य और ठीक है: “इन योगिकों की उत्पत्ति से यह पता चलता है कि कुछ कार्बनिक वस्तुओं में हरिन् तथा अरुणिन उद्जन की ही भांति व्यवहार करते हैं। उसने केवल इक हरिनीलिन् ही नहीं बल्कि ट्रि, त्रि तीनों तैयार कीं। हरिन् तथा अरुणिन का प्रभाव ज्ञात करके हाफमैन को नैलिन् का प्रभाव जानने की लालसा हुई और १८४८ ई० में उसने नैलोनीलिन् केवल नैलिन् के

नीलिन् से मिलाने से ही तैयार कर ली। इन तीनों तत्वों के प्रभाव से इनके स्वभावों के क्रम का भी अच्छा ज्ञान हुआ अर्थात् हरिन्, अरुणिन, नैलिन् उद्जन के लिये क्रम से स्नेह रखते हैं। उसने श्यामोजन के प्रभाव से श्यामोनीलिन् भी प्राप्त की।

इन अनुमन्थानों के पश्चात् हाफमैन ने वाष्पीय कार्बनिक चारों के आणविक गठन पर काफी कार्य किया। और इन्हीं के साथ साथ चारोंदों के गठन पर भी जो साधारण चारों की भांति वाष्पीय नहीं होते कई लेख प्रकाशित किये। त्रिमण्डलीय अभिनों पर मण्डली हरिदों का फिर कुछ प्रभाव होता है या नहीं यह दर्पने के लिये उसने ज्वलील हरिद को त्रिज्वलील अभिन के साथ बन्द नली में गरम किया परन्तु इस से पहिले तो कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई परन्तु बाद में चतुर्ज्वलील नैलिन् के कुछ रवे प्राप्त हो सके। अपने लेख में हाफमैन ने इन नये नैलिदों को चतुर्-अमोनियम का स्थापित पदार्थ ठहराया है अथवा नोषजन परमाणु का चार मूलों से मिलनेका सिद्धान्त रखने वाला पहिला व्यक्ति हाफमैन ही था।

इसके लगभग आठ वर्ष बाद उसने कैहर्स के साथ स्फुर चारों पर कई लेख प्रकाशित किये जिनमें इनके बनाने की वर्तमान विधि अर्थात् त्रिदारील तथा त्रिज्वलील स्फुरिन् की उत्पत्ति फ्रैकलैंड के दस्त दारील तथा ज्वलील को स्फुरात्रिहरिद के साथ गरम करने से बतलाई और बहुत से स्फुरोनियम योगिक भी बनाये। हाफमैन तथा कैहर्स ने लगभग १२ लेख स्फुरिन् तथा स्फुर चारों पर प्रकाशित किये जो कार्बनिक रसायन में बड़े उत्तम कार्यों में समझे जाते हैं।

हाफमैन ने मद्यों पर केवल थोड़ा सा ही कार्य किया और वह एलील मद्य पर कैहर्स के ही साथ हुआ जिसमें उसने एलील गन्धक इत्यादि के बनाने की विधियाँ बतलाईं। वह केवल एक असंशुक्त मद्य का प्रथम बनाने वाला ही नहीं था बल्कि उसके साथ साथ सोर्बिकाम्ल (Sorbic acid) पवती रसभरियों को भाप के साथ श्रवण करने से बनाया।

अकार्बनिक रसायन क्षेत्र में उसने अधिक कार्य नहीं किया क्योंकि इस भाग में उसका केवल डूमा के साथ एक ही लेख मिलता है जिसमें टिटैन अक्वाइड के बनाने की विधि दी हुई है और साथ ही साथ आंजनम् हरिद का प्रयोग हरिन् यौगिक बनाने में दिया हुआ है। हाफमैन इतना कार्य करने पर भी विश्लेषणात्मक रसायन को भी काफी ध्यान में रखता था। इसके प्रमाणमें केवल इतना ही कह देना उचित है कि ताम्रम् तथा सन्दस्तम् को गन्धिद बना कर पृथक करने की विधि उसी की निकाली हुई है। उसने ग्रैहम इत्यादि के साथ जल विश्लेषण पर भी बहुत कुछ कार्य किया और सरकार को कई बार शहर के जल विभाग के विषय में कई लेख लिखे।

१८४९ ई० में हाफमैन ने दिव्योल समश्यामिद तैयार किया और साथ ही साथ गन्धकी सम श्यामिद बनानेकी रीति भी निकाली। इन्हीं योगिकों पर कार्य करते हुये उसने श्यामूत्रिकासल को अर्थात् श्यामिकासल के संघट्टीकरण से बनाने की विधि ज्ञात की। अधिक शुद्ध किया हुआ दारिलगन्धकी श्यामिद का संघट्टभवन नहीं होता है, कुछ सरसों का तैल अवश्य बन जाता है।

१८७९ ई० में बर्लिन विश्वविद्यालय की प्रयोगशाला में हाफमैन ने कोनीन तथा मिर्चीदिन के गठन पर कार्य आरम्भ किया जिसमें उसने वह अद्भुत विधि निकाली जिसके बिना किसी चारोद का गठन नहीं ज्ञात किया जा सकता। इस विधिको आजकल पूर्ण दारिलकरण (Exhaustive Methylation) कहते हैं। हाफमैन ने मिर्चीदिनके विषयमें केवल सैद्धान्तिक विचार ही प्रगट किये थे परन्तु कोनिगसे कार्यसे उनकी सत्ता का प्रमाण भी मिल गया है।

हाफमैन ने भौतिक रसायन के क्षेत्रमें कम कार्य नहीं किया। अपने शिष्य थार्पके साथ उसने वाष्पीय पदार्थों का वाष्प घनत्व निकालने की विधि निकाली थी। हाफमैन बोतल का नाम तो लगभग विज्ञान के सभी पाठकों को विदित है।

एक बड़ा रसायनज्ञ होने के अतिरिक्त हाफमैनमें

और भी बहुत से गुण थे जिनके बिना बतलाये उसकी जीवनी भले प्रकार नहीं समाप्त हो सकती। हाफमैन एक उच्च कोटि के गुरुओं में गिना जा सकता है। यहां तक कि उसकी तुलना केवल लीविग से ही की जा सकती है जिसके वह सर्वोत्तम शिष्यों में से था। चाहे प्रयोगिक कार्य में हो चाहे व्याख्यानों में, उसके मस्तिष्क की अपूर्व भलक सब जगह चमकती थी। जिस सुविधा तथा गूढ़ता के साथ वह अपने शिष्यों को कार्यमें लगाता तथा उनकी उलझनोंको सुलझाता था अकथनीय है। हाफमैन ने कार्बनिक रसायन में नये नये अध्याय उत्पन्न कर डाले, नीलिन् पर तो लगभग सब उसी के हाथों की करामात है। और रसायनज्ञों की अपेक्षा हाफमैन को साहित्य से भी शौक अधिक था और उसमें कानो चतुर और निपुण भी था। केवल जर्मन या अंगरेजों ही नहीं वह फ्रांसीसी तथा स्वेडिश इत्यादि सब ही भाषाएँ जानता था और उनमें भली भांति अपने विचार समझा सकता था। इङ्ग्लैंड में रसायन के प्रति शौक उत्पन्न करने वाला हाफमैन ही है और उसी समय से ही वहां रसायन की नींव पड़ी। उस समय के लगभग सभी बड़े अंगरेज रसायनज्ञ उसके ही शिष्य थे जैसे सर विलियम परकिन, सररोलफ्रेड आबेल, सरविलियम क्रुक्स तथा आर्मस्ट्रॉंग इत्यादि। इतना होने पर भी उसमें दयालुता की तो कोई सीमा ही न थी और न उसके भीतर कोई जाति द्वेष ही था। यद्यपि जातिका जर्मन था पर उसने सबसे अधिक लाभ अंगरेजोंको ही पहुँचाया। उसके साथ कार्य करने वालों में कोई ही ऐसा अभाग्य होगा जिसको उसके प्रोत्साहनसे कार्य करनेकी लालसा न उत्पन्न हुई हो और यही कारण है कि उसने अपने जीवन में इतना अधिक कार्य किया और दूसरों से कराया।

१८६५ ई० में हाफमैन बांन विश्वविद्यालय में मुख्य आचार्य के पद पर २० वर्ष इङ्ग्लैंड में रह कर अपने देश को लौटा। परन्तु इसके कुछ महीने ही पश्चात् बर्लिन विश्वविद्यालय में मुख्य आचार्य नियुक्त किया गया। हाफमैन की प्रतिष्ठा के लिए

इतनाही कह देना काफी है कि वह उस समय की लगभग सभी वैज्ञानिक सभाओं का सदस्य था और जर्मन कैमिकल सोसाइटी का बहुत दिनों तक सभापति रहा। १८५४ ई० में रायल सोसाइटी का रायल पदक तथा १८५५ में कापले पदक प्रदान किया गया तथा १८८२ ई० में रायल सोसाइटी आफ आर्ट्स का ऐल्बर्ट पदक। हाफमैन १८९५ ई० में ७४ वर्ष की आयु पर यकायक ही इस संसार से चल बसा।

सर विलियम हेंनरी परकिन।

(१८३८—१९०७)

परकिन का जन्म १८३८ ई० की १२ मार्च को लन्दन में हुआ। उसका पिता जार्ज परकिन एक ठेकेदार था। परकिन की प्रारम्भिक शिक्षा पहले एक छोटे से स्कूल में हुई और इसके पश्चात् सिटी आफ लन्दन स्कूल में भेज दिया गया। जैसा कि बहुधा देखा गया है “होनहार विरवान के होत चीकने पात” वैसाही बहुतेरे और रसायनज्ञों की भाँति परकिन के विषय में कहा जा सकता है। शुरू से ही परकिन को प्रयोग देखने तथा करने की लालसा लगी रहती थी, परन्तु उस समय जब कि परकिन स्कूल में पढ़ रहा था विज्ञान में बहुत कम क्या बिल्कुल शिक्षा दी ही नहीं जाती थी। टामस हाल उस स्कूल में जो कि हाफमैन के शिष्यों में से था विज्ञान पर कभी कभी व्याख्यान दिया करते थे जिनको परकिन बड़े उत्साह से सुनता था और इस छोटे से बालक के उत्साह का प्रभाव टामस हाल पर ऐसा पड़ा कि तुरन्त ही उसे अपने व्याख्यानो में प्रयोग दिखलाने पर नियुक्त कर दिया। परकिन की स्कूल शिक्षा तो समाप्त हो गई परन्तु अब प्रश्न उठा कि आगे क्या करना चाहिये। छोटे बालक का पिता तो चाहता कि नवयुवक उसकी भाँति ठेकेदारी का कार्य सम्भाले परन्तु परकिन के हृदय में तो रसायन का प्रेम हिलोरे ले रहा था। किसी न किसी तरह टामस हाल के परिश्रम से परकिन के पिता ने उसे रसायन पढ़ने की आज्ञा दे दी। अब १८५३ ई० में परकिन ने विश्वविख्यात रसायनज्ञ

हाफमैन की प्रयोगशाला अर्थात् रायन कालेज आफ केमिस्ट्री में प्रवेश किया।

बस यही से परकिन के भविष्य की नींव पड़ी। १४ वर्ष की आयु में ही उसने भाप इंजन बनाने की चेष्टा की थी और लगभग सफलता के भी पहुँच चुका था परन्तु समय के विपरीत अधिक आगे न जा सका। हाफमैन की संरक्षकता में परकिन ने १५ वर्ष की आयु में कार्य आरम्भ किया परन्तु इतनी बाल्य-अवस्था में ही अपने गुरु पर ऐसा प्रभाव डाला कि हाफमैन ने अगले ही वर्ष उनको अपना सहायक बना लिया। यह पहले ही बता चुके हैं कि १८ वर्ष की ही अवस्था में परकिन ने भाप का अन्वेषण किया था।

परकिनको सबके पहिले हाफमैन ने अंगारिन पर कार्य सौंपा, क्योंकि उस समय हाफमैन की रुचि मुख्यतः उदकर्वनो से चार बनाने पर लगी हुई थी। अंगारिन का मिलना भी सुलभ न था क्योंकि यह कालतार के स्रवण से ही प्राप्त की जाती थी। खैर किसी तरह परकिन ने इस अशुद्ध वस्तु से शुद्ध पदार्थ तैयार किया परन्तु इस शुद्ध पदार्थ का बोपीकरण करना एक प्रकार से परकिन को असम्भव सा ही प्रतीत हुआ। इतनी थोड़ी अवस्था में असफलता को प्राप्त होकर भी युवक परकिनका साहस न टूटा और यही शूर वीरों का लक्षण है। हाफमैन ने यह देखकर कि कहीं परकिन का मन चलायमान न हो जाय नफथीलामिन पर श्यामिद हरिद का प्रभाव विदित करने का कार्य दिया और इसमें परकिन को पूरी सफलता हुई। यह कार्य १८५५ ई० में कैमिकल सोसाइटी की पात्रकामें प्रकाशित हुआ। इस कार्यसे प्रसन्न होकर हाफमैन ने परकिन को अनुसन्धान विभाग में नियुक्त कर दिया। उसकी लालसा तथा उत्साह का प्रमाण घर पर अपनी निजी प्रयोगशाला खोलना है क्योंकि उसे केवल हाफमैन की प्रयोगशाला में ही कार्य करके सन्तोष न होता था, दूसरे हाफमैन के साथ कार्य करने में उसे अपने विचारों के अनुसार कार्य करने का समय बिल्कुल न मिलता था।

परकिन के मुख्य अनुसन्धान के विषय में पहले ही कहा जा चुका है कि किस प्रकार कुनिन का संश्लेषण करने में उसने मात्रे रंग विदित किया। इस अनुसन्धान का जो प्रभाव संश्लेषित रसायन य रंग रसायन पर पड़ा है उसका अनुमान लगाना कुछ दुर्लभ प्रतत् होता है परन्तु इसके संबंधमें इतना ही कह देना काफी है कि इस नये रंगके बनते ही बहुतसे परिश्रमी रसायनज्ञ इस नई रीति के प्रयोग में जुट गये। यद्यपि परकिन को व्यवसाय इत्यादि का किसी प्रकार का अनुभव या सुविधान न था परन्तु तबभी अपने विचारों की पूर्ति के लिये रायल कालेज छोड़ कर इस रंग को अधिक मात्रा में बनाने के लिये उद्यत हुआ। इस नई खोज के महत्व को देख कर उसका पिता जो पहिले अपने छोटे बालक के रसायन पढ़ने से रुध्र था उसके वित्कुल साथ हो गया और अपनी आर्य का अधिक से अधिक भाग इस व्यवसाय के प्रति लगाने लगा। साथ ही साथ परकिन का ज्येष्ठ भ्राता टामस परकिन भी इसमें सम्मिलित हुआ और दोनों व्यक्तियों के उद्योग से यह नया कार्य्य आरम्भ हुआ। इसके विषय में इस लेख के आरम्भ में ही काफी वर्णन किया गया है।

परन्तु यह न समझना चाहिये कि परकिन को धन का लालच था और इसी लिये वह रसायनिक कार्य को छोड़ कर व्यवसायी हो गया; नहीं, उसे तो रसायनिक प्रयोगों से अगाध प्रेम था और व्यवसायिक कार्य करते हुये भी नई नई खोजों में लगा रहा। १८५८ ई० में डूमा के साथ मधुन (अमिनो-सिरकाम्ल) को अरुणो-सिरकाम्ल पर अमोनिया के प्रभाव से बनाने की विधि निकाली। अभी तक यह पदार्थ खाद्य पदार्थों से ही प्राप्त किया सकता था। यह अमिनो अम्ल प्रत्यमिन के मुख्य पदार्थ होते हैं और वास्तव में ऐसे पदार्थों का पहला संश्लेषण इसी समय से आरम्भ होता है।

१८६० ई० में ड्यूमा ही के साथ इमलिकाम्ल, वसिकाम्ल तथा सेबोविकाम्ल (Maleic acid) का परस्पर सम्बन्ध निकाला और अमामिकाम्ल का

सन्श्लेषण द्विअरुणोरालिकाम्ल से किया। इन सन्श्लेषणोंसे स्पष्ट विदित है कि अरुणो-स्थापित अम्लों से साधारण या स्थापित अम्ल बनाने की विधि का अधिक प्रयोग उसने ही किया था।

१८६७ ई० के लगभग परकिन ने सुरभित मद्या-
नार्नी पर गिरकिक अनार्द्रिद का प्रभाव देखना
आरम्भ किया जिससे विख्यात “परकिन प्रक्रिया”
विदित हुई जिससे असम्प्रुक्त अस्तो के बनाने की
साधारण विधि का अन्वेषण हुआ और इसी प्रक्रिया
के आधारपर क्रूमरिन का सन्श्लेषण हुआ । क्रूमरिन
बड़ी उत्तम महक वाली वस्तु है जो टौका छीमियोंमें
पाई जाती है । अभी तक सुगन्धित पदार्थ अधिकतर
फूल या पत्तों के स्रवण से ही प्राप्त किये जात थे
परन्तु परकिन ने ही स्रव से पहिले ऐसे पदार्थ को
प्रयोग शाला में सश्लेषित किया । और इसी समय
से और दूसरी ऐसी वस्तुओं का प्रयोगशाला में
बनाना आरम्भ हुआ । इस प्रकार पाठक देखेंगे कि
केवल रंगों के ही संश्लेषण का जन्म दाता नहीं
बल्कि सुगन्धित वस्तुओं को भी प्रयोग शाला में प्रथम
बनाने वाला परकिन ही था । परकिन प्रक्रिया निम्न
लिखित है ।

क, उ, क उ ओ + उ, क उ क ओ ओ उ
बानजावमयानार्द्ध मिरकास्त

=क, उ, क उ=क उ क आ ओ उ+उ, ओ

दालर्चानिकाग्ल

જલ્ન

दालचीनिकासल का इस उत्पत्ति से ही बायर तथा हैरो नील के संश्लेषण में सफलता का प्राप्त हुये। परकिन ने द्विअरुणो सिरकासल से मधुकाष्ठिकासल बनाने की विधि भी ज्ञात की जिससे वनस्पति रसायन को बहुत लाभ हुआ।

अन्तिम वर्षों में परकिन ने रसायनिक वस्तुओं के सुन्त्रकीय घुसाव पर बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य किया। यद्यपि पैरेडे इस स्वभाव को पहिले ही विदित कर चुका था परन्तु इस विषय में पूर्ण खोज करने का श्रेय उसी को है। इन अनुसन्धानों के आधार पर

बस्तुओं के स्वभाव तथा गठन निकालने की एक नई ही रीति मालूम कर डाली और साथ ही एक अद्भुत यन्त्र का जो अब तक प्रयोग किया जाता है, आविष्कार किया। १८७५ ई० में परकिन ने व्यवसायिक कार्य से अपना सम्बन्ध छोड़ दिया और अधिकतर कार्य रसायनिक खोजों के सम्बन्ध में किया। मंजिष्ठिनके विषय में पहिले ही इस लेख में बताया जा चुका है।

इतना महान् पुरुष होने पर भी परकिन का स्वभाव बड़ा सच्चा तथा न्यायशील था। व्यवसायोंसे सम्बन्ध होने पर भी उसको न्याय से ही लगन थी। साथ ही साथ जो जो उसके साथ या अध्यस्ततामें कार्य करते थे उनको सर्वदा अपने घरों के समान प्यार करना भी उसके स्वभावों का एक विशेष गुण था। उम्र समयकी लगभग सभी अच्छी सोसाइटियों ने उसे सदस्य चुन कर सम्मानित किया। केमिकल सोसाइटीका सभापति (१८८३—१८८५), रायल

सोसाइटीकी कार्यकारिणी सभा का सदस्य १८७९—१८९१ तथा बहुतेसे विश्वविद्यालयोंने उसे सम्मान सूचक डी० एस०सी० उपाधियां दीं। उसके अनुसन्धानोंकी प्रशंसामें रायल सोसाइटी ने रायल पदक १८७९ ई०, डेवी पदक १८८८ ई० में; सोसाइटी आफ आर्ट्स ने एलबर्टपदक (जो हाफमैन को भी मिला था) १८९८ ई० में, केमिकल सोसाइटी ने लांगस्टाफ पदक १८९० में और गैस इंजिनयरोंकी सभाने स्वर्ण पदक १८९२ ई० में, केमिकल इण्डस्ट्री की सभा का स्वर्ण पदक १९२८ ई० में और जर्मन केमिकल सभाने प्रो० ऐमिल फिशर द्वारा हाफमैन पदक १९०६ में और उसी वर्ष पेरिस केमिकल सोसाइटीने लैवाशिये पदक प्रदान किया। सर विलियम परकिन प्रो० विलियम परकिन (द्वितीय) का पिता था जिसने प्रिंथन तथा कर्पूरों पर बड़ा ही महत्व पूर्ण कार्य किया है। १४ जुलाई १९०७ ई० को परकिन की मृत्यु हुई।

अवकाश-रसायन तथा कीटाणु संबंधी विज्ञानका आरम्भ और पासत्यूरक अनुसन्धान

विश्वविख्यात रसायनज्ञ (Berzelius) बर्जेल्यूस का कथन था कि दो भिन्न भिन्न वस्तुओंका एकही आणविक सूत्र नहीं हो सकता परन्तु इस सिद्धान्तके विरुद्ध सबसे पहिले दरजेल्सके शिष्य (Wohler) वोल्फरके अनुसन्धान हुए। वोल्फरने श्यामिकाम्लके कार्यसे यह दिखला दिया था कि एक ही आणविक सूत्रवाली दो वस्तुओंका होना सम्भव है जैसे (उ, क नो ओ) से श्यामिक तथा सम-श्यामिकाम्ल दोनों दर्शाये जा सकते हैं। कार्बनिक रसायनमें यह घटना एक महत्वकी बात है क्योंकि समरूपता कार्बनिक रसायनका एक मुख्य लक्ष्य है। जैसे (क, उ, ओ) से दो बिल्कुल भिन्न और विपरीत पदार्थों को दर्शाया जाता है।

क उ, ओ क उ, तथा क, उ, ओ उ
दारील ज्वलक ज्वलील मद्य
(Methyl Ethner) (Ethyl Alcohol)

इन दोनों वस्तुओंमें कितना भारी भेद है एक ज्वलक है और दूसरा मद्य। अब इसी प्रकार का एक दूसरा उदाहरण लीजिये। जैसे (क, उ, ओ) इस सूत्रसे निम्नलिखित दो यौगिक दर्शाये जा सकते हैं।

क, उ, ओ क, उ, तथा क उ, ओ क, उ,
ज्वलील ज्वलक दारील अम्लील ज्वलक

यद्यपि यह दोनों ही ज्वलक हैं तथापि इनके रसायनिक तथा भौतिक भावोंमें भेद है। अथवा, दो समरूपिक यौगिकोंके स्वभावोंमें भेद होता है और होना भी चाहिये क्योंकि दो भिन्न भिन्न वस्तुएं हैं पिछला उदाहरण (metamerism) मध्य रूपताका है अर्थात् दोनों यौगिक एकही समुदाय (family) के होने चाहियें। इन सब अनुसन्धानोंसे यह बात सिद्ध हुई कि दो ऐसी वस्तुएं जिनका आणविक सूत्र एक ही हो रासायनिक तथा भौतिक स्वभावोंमें एक सी नहीं हो सकती। क्या ऐसी वस्तुएं भी हो सकती हैं जिनका आणविक सूत्र भी एक ही हो और रासायनिक तथा भौतिक स्वभाव भी एक ही से हो? इस प्रश्नका उत्तर अवकाश-रसायनके ज्ञानसे मिला। वास्तव में ऐसी वस्तुएं होती हैं जो एक ही आणविक सूत्र रखती हुई और भिन्न ढाँचेपर भी एकसा ही रासायनिक तथा भौतिक स्वभाव दिखलाती हैं। अगले कुछ प्रष्टोंमें अवकाश-रसायनका कुछ वर्णन करनेकी चेष्टा की जायगी और उनके पढ़नेमें यह पता लग जायगा कि किस प्रकार ऐसी दो भिन्न वस्तुओंका होना जिनका आणविकसूत्र एक ही हो और रासायनिक तथा भौतिक स्वभाव भी एकहीसे हों, संभव है।

अवकाश-रसायनका आरम्भ
पाठकोंको ज्ञान हागा कि द्वयावर्जनकी घटना

(double refraction) न्यूटन तथा हाइगन मालूम कर चुके थे, परन्तु इस और कोई विशेष कार्य न हो पाया था। साधारण तथा अस-साधारण किरणोंका स्वभाव ठीक ठीक तौरपर मैलस ने ही सन् १८०८ में मालूम किया। इसी वर्ष उसने यह बात बतलायी कि परावर्तन (refraction) से भी दिग्प्रधानता (polarisation) उत्पन्न हो सकती है तथा आइसलैंड स्फारमें से हा कर गुजरनेवाली किरणें दिग् प्रधान हो जाती हैं। और इस प्रकार साधारण किरणोंसे भिन्न हो सकती हैं।

मैलसके थोड़ी अवस्थामें मर जानेपर इस अद्भुत घटनाका विस्तार जो कि विज्ञान और विशेषकर भौतिक विज्ञानकी पूँजी है बायों तथा अरेगोंके अनुसन्धानोंसे हुआ। बायोंके अनुसन्धानोंके मूल्यका और विशेषकर उस लाभ और सेवाका जो उनसे रसायन विज्ञानका हुई है अनुमान लगाना कठिन क्या अशभव है। अभी तक यही विदित था कि केवल कुछ ठोस पदार्थ ही द्वायवर्जक होते हैं? परन्तु कुछ और भी ऐसे कार्बनिक पदार्थ हैं जो इस स्वभावका प्रत्येक दशामें दर्शाते हैं, चाहे घोल, चाहे द्रव दशामें हो। साथहीसाथ बायो इस घटनाकी महत्ता जानने तथा बतलानेमें पिछड़ा हुआ न था उसने तुरन्त ही बतलाया कि क्विंजर (quartz) तथा आइसलैंड स्फारके रवोंका द्वायवर्जन-स्वभाव रवोंकी दशापर निर्भर है अर्थात् यदि किसी प्रकार इन रवोंकी दशा या बनावट भङ्ग कर दी जाय तो इनका यह स्वभाव भी जाता रहेगा। परन्तु कार्बनिक यौगिकोंमें यह बात नहीं पायी जाती। उन्हें चाहे रवोंका दशामें लीजिये चाहे घोल बनाइये किसी दशामें भी उनका लीजिये उनका द्वायवर्जनस्वभाव नहीं बदलता। इससे यह विदित हुआ कि विल्लोर इत्यादिमें यह स्वभाव केवल रवोंकी विशेष बनावटपर ही निर्भर है, अणुका कोई स्वभाव नहीं, और न इससे कोई संबंध ही रखता है परन्तु कार्बनिक यौगिकों जैसे शर्करा, कर्पूर, इमलिकाम्ल इत्यादिमें यह स्वभाव एक आणविक गुण है इस प्रकार कार्बनिक यौगिकोंके एक विशेष गुणका पता जिमसे

कार्बनिक रसायनमें और विशेषकर यौगिकोंके गठन निकालनेमें अमूल्य सहायता मिली है, बायोंके कार्यसे लगा। अगले कुछ पृष्ठोंके पढ़नेसे इस गुणके लाभ तथा उपयोगका पता पाठकोंको पूरे तौरसे लग जायगा, तथा यह भी विदित होगा कि रसायनज्ञ इस प्रसिद्ध भौतिकज्ञके कितने कृतज्ञ हैं।

लगभग इसी समय या इससे कुछ पहले मिट-शरलिक जो वरजेल्यूसका मुख्य शिष्य या समरूपक नियम (Law of Isomorphism) विदित कर चुका था और इमलेत तथा परइमलेतोंका स्वभाव जाननेकी चेष्टा कर रहा था। यह कार्य करते हुए उसको विदित हुआ कि संदस्तक अमोनिया इमलेत तथा परइमलेत (अभ्रामिकेत) का रासायनिक संगठन, आपेक्षिक गुरुत्व, द्वायवर्जनता तथा रवदार दशा एक ही हैं इसलिये उनके प्रकाश अक्षों (optic axis) के बीचका कोण भी बराबर होना चाहिये और उनके धोलोंका द्वायवर्जन भी बराबर हो। परन्तु इमलेतका धोल प्रकाश-भ्रामकता दिखलाता है परन्तु परइमलेत का धोल नहीं दिखलाता यद्यपि और सब स्वभावोंमें वह समान है।

पास्तयूर अभी युवक ही था। उसने अपने कालेज का अध्ययन समाप्त किया ही था कि उसको रवे सम्बंधी विज्ञान (Crystallography) का शौक हो गया और इसी शौकका लेते हुए उसने डेला प्रोवांस्टके कार्यको दांढरगया। आश्चर्यकी बात है कि इतने बड़े भौतिकज्ञने भी इमलेतके रवोंपर छोटें छोटें चपटे सिरें (Facets) नहीं देखे थे जो कि पास्तयूरने विदित किये। विल्लोर इत्यादिमें ऐसे सिरें (Facets) हायने विदित किये थे और बायोंका कथन था कि विल्लोरके कुछ रवे दांडे और और कुछ बांडे औरको प्रकाश भ्रमण दिखलाते हैं और यह स्वभाव रासायनिक संगठनसे कुछ न कुछ सम्बन्ध अवश्य रखता होगा। इन सब अनुसन्धानोंका पास्तयूरपर बड़ा प्रभाव पड़ा और इमलेतके रवोंपर चपटे सिरों (Hemihedral facets)का होना भी रासायनिक संगठनसे कुछ सम्बन्ध अवश्य रखेगा। इस बातके जाननेके लिये उसने

भिन्न भिन्न १९ इमलेतोंके रवे तैय्यार किये और सब रवोंमें चपटे सिरें (hemihedral facets) पाये । और सबसे महत्व पूर्ण बात यह थी कि इन सब इमलेतों पर यह सिरें एकही प्रकारके थे, एक ही दिशामें थे और सब एक ही ओरको प्रकाश-भ्रमण दिखलाते थे । इस कार्यमें सफलता प्राप्त करके पास्त्यूरको और कार्य करनेके लिये उत्तेजना हुई और जैसा कि पाठक देखेंगे इसी कार्यसे उस मुख्य विषयकी स्थापना हुई जिसके महत्त्वका समयोगी मारे रसायन विज्ञानमें और कोई दूसरा नहीं ।

पास्त्यूरने अब मिटशरलिकके कार्यपर दृष्टि डाली । वह पहिलेही दिखला चुका था कि इमलेतों तथा (अभ्रामेत) पर इमलेतोंमें कितनी समानता है । अन्तर केवल यही है कि इमलेत प्रकाश भ्रामक है और अभ्रामेत नहीं । इस बातको जानकर कि एक इमलेत ऐसा भी है जिसमें प्रकाश भ्रमणकी शक्ति नहीं है, इस बातकी अति उक्तंठा हुई कि इसके रवोंकी भी खोज की जाय । अस्तु उसने अभ्रामेतके रवे तैय्यार किये । पास्त्यूरका विचार था कि इन रवोंपर चपटे सिरें (hemihedral facets) नहीं होंगी, परन्तु इस विचारके विरुद्ध इन रवोंपर भी सिरें (Facets) दिखलाई पड़े । परन्तु गौरसे देखनेमें ज्ञात हुआ कि अभ्रामेतके सब रवोंपर एक ही ओर सिरें (facets) नहीं हैं बल्कि कुछपर दाहिनी ओर हैं और कुछपर बाई ओर । अपने सिद्धान्तको ठीक मानते हुए पास्त्यूरने दाहिनी ओरवाले रवे एक बर्तनमें और बाई ओरवाले दूसरे बर्तनमें इकट्ठा किये और उनके घोलोंका प्रकाश-भ्रमण एक (Polaroscope) दिग्प्रधान दर्शकमें देखा । इस प्रयोगके फलोंको विज्ञान पढ़नेवाले तो कम से कम जानते हैं कि वह क्या हुए और उनसे कितनी बेहद खुशी पास्त्यूरको हुई । दिग्प्रधान दर्शकमें दाई ओरके घोलको रखनेसे दाई ओरका प्रकाश भ्रमण हुआ और बाई ओर वालेसे बाई ओरको । इस प्रयोगकी सफलतापर पास्त्यूरको इतनी प्रसन्नता हुई कि तुरन्त बरट्टेंडोको जो उस समय प्रयोगशालामें था चिपटा लिया और उसके साथ चिल्ला चिल्लाकर नाचने लगा ।

जब कोई नवयुवक महत्त्वपूर्ण कार्य करता है तो बड़े लोग उसको आरम्भमें ठीक नहीं समझते और ऐसा ही पास्त्यूरके साथ हुआ । जिस समय इन प्रयोगोंके फल फ्रांसकी वैज्ञानिक सभामें प्रकाशित करनेके लिये भेजे गये तो अधिकतर वैज्ञानिकोंको इसपर कुछ सन्देह हुआ; इसलिये इसकी जांचका कार्य बायोको जो उस समय इस विषयका विशेषज्ञ माना जाता था सुपुंदा हुआ । बायोने पास्त्यूरको अपनी प्रयोगशालामें बुलाया और सब प्रयोगोंको अपनी अध्यक्षता तथा उपस्थितिमें दोहरानेका अनुरोध किया । पास्त्यूर तो यह चाहता ही था । अभ्रामिकाम्ल बायोने अपनी प्रयोगशालासे ही दिया जिसको कि वह पहिले देख चुका था कि उसके घोलमें प्रकाश-भ्रमण शक्ति नहीं है । इस अम्लका लवण बनानेके लिये सोडा तथा अमोनिया भी अपने ही पासमें दिये । लवण बनाकर घोल वाष्पीकरणके लिये रख दिया गया जब बहुत थोड़ा रह गया तो ठंडा किया गया ताकि रवे उत्पन्न हो जावें । बायोने पास्त्यूरसे रवे इकट्ठे करनेके लिये कहा और यह भी अनुरोध किया कि दाहिनी ओरको प्रकाश भ्रमण करनेवाले दाई ओर रख्ये जाये और बाई ओर भ्रमण करनेवाले बाई ओर । इसके पश्चात् बायोने स्वयं ही इन रवोंके घोल तैय्यार किये और सबसे पहले बाई ओर प्रकाश-भ्रमण करनेवाला घोल दिग्प्रधान-दर्शकमें रक्खा । दोनों अर्थोंमें प्रकाश देखते ही उसके पता लग गया कि वास्तवमें घोल बाई ओरका प्रकाश-भ्रमण करता है । इस प्रयोगका प्रभाव वृद्ध वैज्ञानिकपर इस कदर पड़ा कि वह तुरन्त पास्त्यूरका हाथ पकड़ कर नाचने लगा और कहा “मेरे प्यारे बच्चे, मैंने विज्ञानको इतना प्यार किया है कि इन अर्थोंका प्रकाश देखकर मेरा हृदय प्रमन्नताके कारण गद्गद् हो रहा है” ।

एक प्रकारसे यह पता लग गया कि बहुतसे ऐसे यौगिक जो प्रकाश-भ्रमण नहीं करते ऐसे दो यौगिकोंमें मिलकर बने हैं जो एक दूसरेके विपरीत

दिशामें भ्रमण करते हैं जिससे कि मिश्रित यौगिकमें प्रकाश-भ्रमण शक्ति ज्ञात नहीं होती। इस विषयपर पासत्यूरने सबसे अधिक कार्य किया। इन प्रयोगों के प्रकाशित होने ही एक हलचलसी मच गई और वास्तवमें यह एक ऐसी बात भी थी जिसके लिये वैज्ञानिक वर्षोंसे तत्पर थे। पासत्यूर यह तो सब कुछ कर सका परन्तु इस घटनाका कारण समझानेमें उसे विशेष सफलता न हुई। इस कार्यमें विश्व-विख्यात भौतिक रसायनज्ञ फॉट हाफ van't Hoff तथा ला वेल्लेको सफलता हुई और अबतक उन्हींका सिद्धान्त ठीक माना जाता है। इस विषयपर विमलिकेनसका कार्य दुग्धिकास्लकी प्रकाश-भ्रमण-शक्ति पर महत्वपूर्ण हुआ है। इन सब कार्योंका वर्णन पासत्यूरकी जीवनीके साथ दिया जायगा। इस प्रकार एक नई रसायनका उद्घाटन पासत्यूरके हाथोंसे इतनी युवावस्थामें हुआ।

लुई पासत्यूर (१८२२-१८९६)

पासत्यूरका जन्म २७ दिसम्बर १८२२के डोल (फ्रांस) में हुआ। जब कि वह केवल दो वर्षका ही था उसका पिता अपने पुराने घरको छोड़कर आरबोयमे चमड़ा बनानेका काम करने लगा। इसके पिताको स्वदेश-भक्तिकी तो मूर्ति ही समझना चाहिये क्योंकि जिस समय फ्रांसमें युद्ध हुआ तो वह नेपोलियनकी ओरसे लड़ाईपर गया। और स्वयं नेपोलियनने उसे रंगभूमिमें आकर सुसज्जित किया। इस स्वदेश भक्तिके पुरस्कारमें पासत्यूरके पिताको "लीजन डे आनर"की उपाधि मिली जो कि मुख्य मुख्य व्यक्तियोंको ही मिलती है।

पासत्यूरके माता पिताको अपने युवक बच्चेकी शिक्षाका बड़ा ध्यान था और इसके लिये सर्वदा उनको बड़ी चिन्ता रहती थी। यहांतक कि अपनी आय कम होनेपर भी वह पासत्यूरको पूरा व्यय देनेकी कोशिश करते थे। आरबोयमे पासत्यूर (College Communal) कम्यूनल कालेजमें भर्ती

हो गया परन्तु यहां उसने पढ़नेकी ओर विशेष रुचि न दिखलाई बल्कि इसके विपरीत वह मछलीके शिकार तथा चित्रकारीमें विशेष रुचि रखता था। इस प्रकार उसको शुरूहीसे चित्रकारीका अच्छा अभ्यास हो गया और इनसे उसे अगले कार्यमें विशेष सहायता मिली।

परन्तु यह देखकर कि उसकी पढ़ाईसे माता पिताको बहुत दुःख होता है पासत्यूरने चित्रकारी इत्यादिको बिल्कुल त्याग दिया और सब क्रीमती क्रीमती यंत्र सर्वदाके लिये बन्द करके रख दिये ताकि किसी प्रकारसे उसके पढ़नेमें कोई बाधा न पड़े। आरबोयके कालजमे मायन्सके पढ़नेकी विशेष सुविधा न देखकर पासत्यूर वीसैंको में पढ़ने चला गया जहां उसे बी० एस-सीकी उपाधि ली। इस समय युवक वैज्ञानिककी रुचि रसायनकी ओर काफी बढ़ चुकी थी और वह अपने बूढ़े अध्यापकको बहुतसे टेंढ़े टेंढ़े प्रश्नोंमें परेशान कर देता था। अन्तमें उसे यही कहना पड़ता था "मैं नहीं जानता" और कभी कभी यह भी कह डालता था कि मुझे तुम लोगोंसे प्रश्न पूछना चाहिये न कि तुमको मुझसे। परन्तु नव-युवकके हृदयमें ज्ञानकी खोजकी लगेन लगे चुकी थी, इसलिये वह अपनी रुचिको पूरा करनेके लिये वहीँके एक दूसरे वैज्ञानिकके पास जाने लगा जो उस समय काफी प्रसिद्ध था।

इसके पश्चात् पासत्यूर एकोले नारमेल (École normal) यानी विश्वविद्यालयमें पढ़ने गया। यहां जब प्रवेशिका परीक्षामें चौदहवां स्थान मिला तो उसे ज़रा शर्म सी प्रतीत हुई और इस बार सम्मिलित न होकर दूसरी बार फिर परीक्षामें सम्मिलित हुआ और चौथा स्थान पाया। नये विश्व विद्यालयमें भर्ती होनेसे पासत्यूरको रामायनिक ज्ञानकी पूर्तिकी काफी सुविधा तथा अवकाश मिला क्योंकि यहां वैलार्डे (अरुणिनका अन्वेषक) तथा डूमा (रूप सिद्धान्तका निर्माता) जैसे महारथियोंके व्याख्यान सुनने तथा उनके पास रहनेका मौभाग्य प्राप्त हुआ। वैज्ञानिक विषयोंसे उसको इतनी रुचि

बढ़ती गई कि रविवारको भी जब कि सब लोग (वैज्ञानिकतः) अपना कार्य स्थगित कर देते हैं वह अपने कार्यमें बराबर जुटा रहता था और यह सुनकर अश्चर्य्य होगा कि एक रविवारको ही उसने हड्डियोसे ५० ग्राम स्फुर तैयार किया था जो कि सुबहके चार बजेसे शामके ९ बजे अर्थात् १७ घंटे तक बनाया गया। इसके कहते हैं ज्ञानकी खोजमें मरना ! क्या बिना किसी लगनके कोई मनुष्य १७ घंटे बराबर इस प्रकार कार्यमें लगा रह सकता है। कभी नहीं। यह है वैज्ञानिकोंकी कार्य्य परायणताका एक मार्ग और एक उदाहरण। यह वेचारे सर्वदा बिना किसी लालचके अपनी प्रयोग-शालाओंमें जब कि संसार आराम करता है विज्ञानदेवीकी पूजा किया करते हैं।

यों तो विशेषकर आचार्य्यके उत्साह तथा परिश्रमसे शिष्योंमें काम करनेकी रुचि प्रबल होती है परन्तु कभी कभी सहकारी कार्य्यकर्त्ताओंका प्रभाव उससे भी अधिक प्रबल होता है। कमसे कम पासत्यूरके साथतो ऐसा ही हुआ। यद्यपि पासत्यूरको वैज्ञानिक खोजकी ओर आकर्षित करनेमें डूमा तथा वैलार्डका विशेष भाग है परन्तु उससे कम डेलाफोम्ने ही पासत्यूरकी दृष्टि अणविक भौतिक विज्ञानकी ओर आकर्षित की जिसमें उसने अपने क्या, संसारके सर्वोच्च कार्य्योंमें से एक कार्य्य किया।

रवे सम्बन्धी विज्ञानमें पासत्यूरके अनुसन्धान पहिलही वनलाये जा चुके हैं कि किम प्रकार अध्रामिक रवे दो प्रकारके भिन्न रवोंसे मिलकर वनते हैं जो स्वयं पृथक् पृथक् दृष्टि तथा वाई और प्रकाश-भ्रमण दिखलाते हैं। पासत्यूरके इस कार्य्यसे उसकी प्रयोगिक चतुराई कार्य्यकौशल तथा अनुभवशक्तिका एक साधारण प्रमाण मिलता है। उसने केवल यही नहीं दिखलाया कि अध्रामिकाल् दक्षिण-ध्रामिक Dextro-rotary तथा उत्तर (वाम) ध्रामिक levo-rotary अस्तोमें परिवर्तित हो सकता है, बल्कि इन दोनों अस्तोको ठीक अनुपातमें मिलानेसे अध्रमि-

काल् फिर बन जाता है। फ्रांसीसी वैज्ञानिक सभाके सामने भाषण देते हुए पासत्यूरने अपने सिद्धान्तको किम हिम्मत और कितने गूढ़ तथा प्रभावशाली शब्दोंमें समझाया इसका पता पाठक स्वयं निम्नलिखित शब्दोंसे लगा सकते हैं।—

“समरूपी वस्तुओंमें तत्त्व तथा उनका अनुपात जिसमें कि वह एक दूसरेसे मिलते हैं समान हैं, केवल उनके परमाणुओंका क्रम Arrangement भिन्न होता है। सबसे बड़े महत्त्वकी बात तो यह है कि इस प्रकार समरूपतासे यह सिद्ध होता है कि केवल परमाणुओंके भिन्नभिन्न arrangement क्रम से ही दो भिन्न प्रकारके अणु उत्पन्न हो सकते हैं। इसलिये रासायनिक तथा भौतिक समानता तथा अन्तरसे परमाणुओंका गठन निकालनेकी एक साधारण विधि ज्ञात हो गई है। यह सब बातें निम्न लिखित शब्दोंमें समझाई जा सकती हैं—

१—जब कार्बनिक यौगिकोंके परमाणु असमसंग-तिक Asymmetric रूपमें arranged क्रमित किये जाते हैं तो उन अणुओंमें प्रकाश-भ्रमण शक्ति आ जाती है।

२—इस अणविक असमसंगतिके प्रभाव या कारणसे ही कार्बनिक यौगिक प्रकाश भ्रामक हो जाते हैं इसलिये प्रकाश भ्रमण का कारण अणविक असम-संगति है।

३ जब कि यह अणविक असमसंगति दो विपरीत रूपोंमें दर्शित होती है तो उन दोनोंके रासायनिक स्वभाव विस्कुल एकमे होते हैं अथवा इस प्रकारके अन्तर तथा समानतामें रासायनिक संयोग रीतिसे कोई भेद उत्पन्न नहीं होता।”

पाठक देखेंगे कि पासत्यूरके इन शब्दोंमें जो आजमें ७३ वर्ष पहिले उच्चारित हुए थे कितनी मय्यता है। यदि पासत्यूरकी विचारशक्ति तथा अनुभवका हमपर प्रभाव पड़ता है तो उसकी प्रयोगिक चतुराई तथा कार्य्यकौशलके लिये हृदयमें और भी प्रतिष्ठा बढ़ती जाती है। अध्रमिकाल्को उसके दोनों Enantiomorphous विषम-रूपोंमें परिवर्तन

करनेकी रवे सम्बन्धी एक विधि पहिले ही बतलाई जा चुकी है। यह पास्त्यूरके कार्य्य कौशलका दूसरा प्रमाण है कि अभीतक इस विधियों के ई विशेष अन्तर नहीं आया है हालांकि इसको लगभग ८० वर्ष बीत चुके। इसकी दूसरी विधि भी पास्त्यूरके ही कर कमलसे विदित हुई। यदि किसी अभ्रमिकास्लके लवण किसी प्रकाश भ्रामक चारके साथ बनाये जाय तो दो प्रकारके लवण उत्पन्न होंगे क्योंकि अभ्रमिकास्लमें दो प्रकारके अम्ल है। इन दोनों लवणोंकी घुलनशक्तिमें अन्तर पाया गया है। इसी कारण एक लवणके रवे शीघ्र ही घोलमें पृथक् होने लगेंगे और दूसरा घुला रहेगा। इस प्रकार इस विधिमें बहुतसे ऐसे अभ्रामिक पदार्थ जिनका प्रकाश भ्रामक भागोंमें पृथक् करना एक प्रकारसे असम्भव ही था प्रकाश-भ्रामक भागोंमें परिवर्तित किये गये हैं। इस विधिकी विशेष प्रयोग एमिल फिशरने कर्बोदितोंके कार्य्यमें तथा लेडेनवर्गने चारोंदोंके कार्य्यमें बड़ी चतुराईसे किया है। मार्कवाल्डको इस विधिकी अधिक उपयोगी तथा सहल बनानेमें काफी सफलता प्राप्त हुई है।

तीसरी विधिजो सबसे अद्भुत तथा महत्वपूर्ण है, पास्त्यूरकी ही निकाली हुई है। यह तो पहिलेहीसे विदित था कि खटिक इमलेट (Calcium Lactate) वायुमें छोड़ देनेसे कुछ दिनों पश्चात् पुंघला पड़ जाता है और खमीरण (Fermentation) होने लगता है। पास्त्यूरने भी एक रोज अपना एक इमलेट घोल इसी प्रकार देखा। यदि कोई और रमा-यनज्ञ होता तो केवल यह कहकर “आह, यह प्रयोग विगड़ गया” घोलको फेंक देता परन्तु पास्त्यूरका तो हर प्रकारसे धुन लगी हुई थी, इन विगड़ी हुई बातोंसे ही तो अनुसन्धान होते हैं। उसने तुरन्त इस घोलको दिग्प्रधान-दर्शकमें रखकर देखा तो बाई ओरको प्रकाश-भ्रमण हुआ। इस प्रयोगका उसपर क्या सारे वैज्ञानिक जगतपर इतना प्रभाव पड़ा कि उसका वर्णन असम्भव है। यह विदित ही था कि दक्षिण-भ्रामक लवणको कीटाणु शीघ्र ही नाश कर देते हैं।

इस लिये पास्त्यूरने विचारा कि अभ्रामेतका दक्षिण-भागता कीटाणुने नाश कर दिया और वाम भ्रामक भाग शेष रह गया है। इस प्रकार अभ्रामिक पदार्थ इस विधिसे भी पृथक् किये जा सकते हैं। इस विधिसे बहुतसे ऐसे पदार्थ पृथक् किये गये हैं और विशेषकर एमिल फिशरने इस विधिकी प्रयोग किया है। इस विधिसे केवल यहही नहीं कि अभ्रामक वस्तुओंको पृथक् करनेकी एक विधि ज्ञात हुई बल्कि इससे शरीर तथा वनस्पति विज्ञानके समझने में विशेष सफलता प्राप्त हुई। क्योंकि इससे विदित हुआ कि प्रकृतिमें भी अधिकतर पदार्थ प्रकाश भ्रामक हो सकते हैं और ऐसा निस्सन्देह पाया गया है कि अधिकतर चारोंद तथा कर्बोदित जो पौधोंमें होते हैं प्रकाश भ्रामक हैं। पास्त्यूर सर्वदा प्रकृतिके असमसंगतिक स्भावको विचारता रहता था। इस प्रयोगसे इस विचारकी पूर्तिकी एक सीधी साधी कुंजी मिल गई। इस गुणका नाम पास्त्यूरने ऐन्ड्रिक ग्वमीरण (Selective Fermentation) रक्खा।

इमलिकास्ल के सम्बन्धमें केवल यही कार्य्य इस महारथीके कर कमलसे नहीं हुआ बल्कि कुछ और भी महत्वपूर्ण बात विदित हुई। यदि दक्षिणक इमलिकास्ल या उसका सिनकोनीन लवण जलके साथ गरम किया जाय तो एक बड़ा अद्भुत परिवर्तन हो जाता है जिसमें कि दक्षिणक इमलिकास्लका वाम इमलिकास्लमें बदलना सिद्ध होता है क्योंकि दक्षिणक इमलिकास्लके घोलमें कुछ अभ्रमिकास्ल बन जाता है और यह अभ्रमिकास्ल विना वाम इमलिकास्लके नहीं बन सकता क्योंकि अभ्रमिकास्ल दक्षिणक तथा वाम इमलिकास्लके योगसे बनता है इसलिए इस प्रयोगसे यह सिद्ध हुआ कि दक्षिणक इमलिकास्ल वाम इमलिकास्लमें परिवर्तित हो जाता है और सबसे आश्चर्यजनक बात तो यह है कि इसी घोलमें एक ऐसा अम्ल बन जाता है जो न तो प्रकाश भ्रामक ही है

और न (Enantiomorphous) विषमरूपोंमें परिवर्तित हो सकता है अथवा अभ्रमिकालसे भिन्न है । इस प्रकार चार प्रकारके इमलिकालसे विदित हुए हैं दो प्रकाश-भ्रामक और दो प्रकाश-भ्रमण न करनेवाले । इस अनुसन्धानका प्रत्यक्ष प्रमाण एमिल फिशरके कर्वेदितके कार्यसे और भी अच्छी तरहसे मिला है । और वास्तवमें इस कार्यकी प्रशंसा करना कमसे कम लेखककी शक्तिके बाहर है । पासत्यूरने सेविकालकी प्रकाशशक्तिपर भी काफी कार्य किया परन्तु उसमें उसे कोई सफलता प्राप्त न हो सकी क्योंकि उसका सर्वेदा यही विचार था कि प्रकाश-भ्रमणका जीवसे अधिक संबन्ध है अथवा जबतक इन रासायनिक प्रक्रियाओंमें जीव भाग नहीं लेता तबतक उनमें प्रकाश-भ्रमण करनेकी शक्ति होना असम्भव है ।

खमीरणपर पासत्यूरका कार्य

सन् १८५४ ई० पासत्यूरने जीवतमें एक महत्वपूर्ण वर्ष है क्योंकि इस वर्ष ३० वर्षका आयुमें ही लिली, विश्वविद्यालयमें वह वैज्ञानिक विभागका अधिष्ठाता नियुक्त किया गया । उसकी इच्छा हुई कि इस जगहपर उसके कार्यका सम्बन्ध लिलीके किसी न किसी व्यवसायमें होना चाहिये । जैसे मद्यका शर्कराकन्द इत्यादि से बनाना । इसी विषयकी खोजमें पासत्यूरका सबसे प्रसिद्ध तथा महत्वपूर्ण कार्य हुआ । जिस समय इस महान व्यक्तिने यह कार्य आरम्भ किया, उस समय खमीरण प्रक्रियाका समझानेके लिए केवल लीविगका सिद्धान्त था जब कभी किसी वस्तुका खमीरण होता है ता उस वस्तुके साथ जो कुछ चीजें होती हैं जैसे यीस्ट (yeast) इत्यादि, वह स्वयं ही विभाजित होने लगती हैं और इस प्रकार उस वस्तुके अणुओंमें जो उनके समीप होती हैं वह विभाजन आरम्भ हो जाता है और इसी विभाजनका नाम खमीरण है । अर्थात् इस सिद्धान्तमें खमीरणका जीवमें कोई सम्बन्ध नहीं है । परन्तु पासत्यूरका शोक इस प्रक्रियासे मुख्यतः

उसके असमसंगतिके अनुसन्धानोंके कारण हुआ । उस समय केलील मद्य प्रकाश-भ्रामक वस्तुओंमें से विदित था और यह वस्तु बहुत सी खमीरण प्रक्रियाओंमें वतौर गौरु (By-Product) पदार्थके नहीं थी । लीविगके सिद्धान्तके अनुसार केलील मद्यकी प्रकाश-भ्रमणशक्ति उस शर्कराकी भ्रमण-शक्तिपर निर्भर होगी जिससे खमीरण किया गया हो । परन्तु पासत्यूरका विचार था कि केलील मद्यके अणु शर्करासे कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रखते । इसलिए शर्कराकी असमसंगतिक शक्तिके केलील मद्यका कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता अथवा शर्कराकी यह शक्ति केलील दशा तक पहुँचने तक नहीं रह सकती क्योंकि उसका यह भी विचार था कि प्रकाश-भ्रामक वस्तुएं कड़ी रासायनिक प्रक्रियाके पश्चात् इस शक्तिके स्थिर नहीं रख सकतीं । दूसरे पासत्यूरके विचारके अनुसार बिना जीवके भाग लिये हुए कोई भी असमसंगतिक पदार्थ नहीं बन सकता । इसलिये वह खमीरण क्रिया जिसमें केलील मद्य बना है जीवसे अवश्य सम्बन्ध रखती होगी और केवल साधारण रासायनिक प्रक्रिया नहीं हो सकती ।

इस विषयमें सबसे पहिला कार्य दुग्ध-खमीरणपर Lactic fermentation हुआ । खमीरणके अध्ययनमें उसे पता लगा कि मद्य खमीरणके समान इसमें भी ऊपरकी ओर एक भूरी भूरी पतली तह जम जाती है जो यीस्टके (cell) सेल या कोप से भिन्न है । इस भूरी वस्तुका कुछ भाग शर्कराके एक नये घोलमें जिसमें यीस्ट और खड़िया मिलाई जा चुकी थी, मिलाया गया । मिलनेके कुछ ही समय पीछे उसमें भी दुग्ध खमीरण बढ़े वेगसे आरम्भ हो गया । इस प्रकार बार बार नया घोल लेनेमें इसी प्रकारके फल प्राप्त हुए । परन्तु लीविगके सिद्धान्तके विष्कुल हटानेमें यह प्रयोग फलीभूत नहीं हो सकता था । सम्भव है कि यीस्टके साथ जो अण्डमिनोद Albuminoid वस्तुये रही हो उनके विभाजनसे खमीरण आरम्भ

हुआ हो, इस बातको जांचनेके लिए पासत्यूरने अण्डसिनोद सम्बन्धी वस्तुयें विलकुल ही हटा दीं और उनके बजाय अमोनिया के लवणों का उपयोग किया। इस प्रकार करनेसे भी यीस्टके सेल शर्करामें भले प्रकार रहते तथा बढ़ते रहते हैं और यह बात दुग्ध खमीरणके कीटाणुओंमें होती है। खमीरणपर कार्य करते हुए ही पासत्यूरको एक ऐसी अद्भुत बात विदित हुई जिसका वर्णन यहां आवश्यक है। नवनीतिक खमीरण करते समय पासत्यूरने घोलका कुछ भाग एक कांचके टुकड़े पर रखकर अनुवीक्षण Microscope यन्त्रके नीचे रखकर देखा तो बाहरके भागके कीटाणुओंमें कोई विशेष गति Motion न दिखाई पड़ी। परन्तु जो बीचमें थे अथवा जिनसे वायु का कोई सम्बन्ध न था वह भली भौति चलते हुए दिखाई पड़ते थे।

इससे यह सिद्ध हुआ कि इन कीटाणुओं के लिये वायुमण्डलका ओपजन हानिकारक है अर्थात् ऐसे भी प्राणि हैं जो ओपजनके बिना जिसपर संसारका जीवन निर्भर है जीते हैं और यही ओपजन उनके लिये लाभदायक होनेके बजाय हानिकारक है। इस क्रिया का नाम उसने अवायवीय श्वासोच्छ्वास क्रिया (Anaerobic Respiration) और इस जीवनका नाम अवायवीय जीवन रक्खा। इस कार्यसे वैज्ञानिक जगलमें एकदम हलचल सी मच गई परन्तु पासत्यूर को अपने प्रयोगों पर पूरा पूरा विश्वास था और इसी कारण वह इस बातको सत्य मानता था और उसने इसीके आधार पर एक नया सिद्धान्त बनाया जो निम्नलिखित शब्दोंमें दिया हुआ है।

“ इस प्रकार ऐसे जीवोंके अतिरिक्त जो बिना ओपजनके जीवित नहीं रह सकते कुछ ऐसे भी जीव हैं जिनके ओपजनकी केवल आवश्यकता ही नहीं बल्कि उसकी उपस्थिति इन जीवोंके लिये हानिकारक है। यह जीव अपने जीवनके लिये कुछ यौगिकोंसे ओपजन खींचते हैं। इस प्रकार इन वस्तुओंका धीरे धीरे विभाजन होता जाता है। इस प्रकारके जीवोंका नाम ‘खमीर’ है और यह भी दूसरे जीवोंकी भांति

कर्वन, उद्भजन तथा नोपजन इत्यादि चाहते हैं परन्तु इनके विरुद्ध साधारण ओपजनकी आवश्यकता नहीं रखते और कम दृढ़ यौगिकोंसे अपने लिये ओपजन खींचते हैं।

स्वयं उत्पत्ति

खमीरणके अनुसन्धानोंके पश्चात् पासत्यूरकी दृष्टि एक ऐसे कार्यकी ओर आकर्षित हुई। जिसका किसी प्रकार विश्वास दिलाना असम्भव कार्य था। क्या जीव स्वयं भी उत्पन्न हो सकता है? इस प्रश्नको वर्तमान जगत्में हल करना तो दूर रहा सोचना भी एक मूर्खता समझी जाती है। अरम्भ तथा विरजिल ने इसकी सम्भावना दर्शाई है कि बहुतसे जीव कूड़े, गोबर इत्यादिमें नमी उत्पन्न होनेपर पैदा हो जाते हैं। ऐसीही कुछ विचार वान हेलमगटका भी था जिमने चूहोंकी उत्पत्तिकी विधि बतलाई है। सन् १७४५ ई० में फादर नीधेमन भी एक प्रयोग किया जिसके आधारपर उसको विश्वास हो गया कि वास्तवमें जीवकी स्वयंभी उत्पत्ति हो सकती है। एक वर्तनमें सड़नेवाला पदार्थ रगकर उसका मुहँ विलकुल बन्द कर दिया गया और उसको गरम किया गया ताकि सब कीटाणु मरजायें। परन्तु इस वर्तनको कुछ दिनों तक रखने पर इसमें कुछ छोटे छोटे कीड़े फिर उत्पन्न हो गये। परन्तु इन प्रयोगों पर काफी गड़बड़ होती रही जबकि १८५५ ई० में पाकेटन फिर स्वयं उत्पत्तिकी सम्भावना बतलाई और साथ ही इसका यह भी कथन था कि सड़नेवाली चीजोंसे साधारण वायुकी विद्यमानतामें भी कीटाणु उत्पन्न हो सकते हैं। इन सब भगड़ोंको मिटा देनेके लिये फ्रांसीसी वैज्ञानिक सभाने एक पुरस्कारका विज्ञापन दिया है जो ऐसे मनुष्यको दिया जाय जो इन प्रयोगोंकी सत्ता सिद्धकरे। इसी समय सन् १८६० में पासत्यूरने अपनी दृष्टि इस ओर दीवाई।

पासत्यूरने श्रोडर इत्यादिके प्रयोगोंको दोहराया और रुईके बजाय Gun Cotton का उपयोग किया।

इस प्रकार वायुमंडल के बहुत से कीटाणु इस रुई में फंस गये जैसा कि इस रुई को मद्य और उबलक के मिश्रण में घोलने से विक्षिप्त हुआ क्योंकि इसके घुलने से मद्य का खमीरण आरम्भ हो गया। दूध में पहले से ही कुछ कीटाणु विद्यमान रहते हैं, और यदि इसका तापक्रम १००° तक कर दिया जाय तो ये मर जाते हैं, और फिर कोई कीटाणु पैदा नहीं होते, यदि इसे वायु से सुरक्षित रखा जाय। वायु में भी अनेक कीटाणु रहते हैं, जिनमें से कुछ तो ऐसे भी होते हैं जो बहुत गरम करने पर भी नहीं मरते। सब प्रकार के प्रयोगों से पास्त्यूर ने दिखा दिया, कि स्वयं उत्पत्ति की सम्भावना बिल्कुल निराधार है। निर्जीव पदार्थों से जीवाणुओं की उत्पत्ति हो ही नहीं सकती। खमीराणु अधिकतर वायुमंडल से ही प्रविष्ट होते हैं। इन प्रयोगों के लिये १८६२ में पास्त्यूर को फ्रांसीसी वैज्ञानिक सभा ने पुरस्कृत किया।

कीटाणु तथा चिकित्सा संबन्धी कार्य

१८६५ ई० में पास्त्यूर को रागों पर कार्य करने का विशेष अवसर मिला। इस समय फ्रांस में

रेशम के व्यवसाय में एक बड़ा हलचल मची, क्योंकि रेशम के कीड़ों को एक भयानक रोग लग गया। पास्त्यूर ने इस रोग का अनुसन्धान आरम्भ किया। द्वा वर्ष के कठिन परिश्रम के पश्चात् सफलता प्राप्त की। उसने प्रयोगों से दिखा दिया कि यह रोग विशेष प्रकार के कीटाणुओं द्वारा फैलता है। यही रोग नहीं, अनेक ऐसे रोग अब तो पता हैं जिनके कारण कीटाणु होते हैं; पर ऐसे कीटाणुओं, या रोगाणुओं का अविष्कार करने वाला पास्त्यूर ही था।

विषाणुओं (Toxins) और प्रतिविषाणुओं (Antitoxins) पर भी इस व्यक्ति ने बहुत से अन्वेषण किये। शरीर के अन्दर सुई द्वारा दवा पहुँचाने की विधि भी इसी ने निकाली। पास्त्यूर का कार्य इतना सर्वव्यापी और परमोपयोगी है कि उसका पूर्ण उल्लेख करना असम्भव है। यह महान वैज्ञानिक १८९६ ई० में परमगति को प्राप्त हो गया। उसकी यादगार में ससार के अनेक स्थलों में इन्स्टीट्यूट खुले हुये हैं।
